“गद्य रंजन”

पाठ्य-पुस्तक

बी.काम/ एम.बी.एस/ बी.काम (हानर्स) बी.काम (बीमा)

B. Com/ MBS/ B. Com (Honors) B. Com (Insurance) Course - Under SEP

प्रथम सेमिस्टर ~ FIRST SEMESTER

एस.ई.पी पाठ्यक्रम ~ SEP SYLLABUS

(2024-25 Onwards)

संपादक

प्रो. शेखर

प्रो. शाकिरा ख़ानम

प्रो. नीता हिरेमठ

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरू - 560001

GADYA RANJAN:

Edited by:
Prof. Shekhar
Prof. Shakira Khanum
Prof. Neeta Hiremath

© बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
प्रथम संस्करण – 2024

Pages: 80

प्रधान संपादक
प्रो. शेखर

मूल्य :-

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एस.ई.पी-2024 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण कैसे किया जाए और उसकी सराहना कैसी की जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। एस.ई.पी सेमिस्टर (सीबीसीएस) पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष प्रो. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कथा संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू–560001

प्रधान संपादक की कलम से......

बेंगलूरू नगर विश्वविध्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को राज्य शिक्षा नीति - 2024 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एस.ई.पी सेमिस्टर पध्दति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को राज्य शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किए गए। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

प्रो. शेखर
अध्यक्ष, (बी.ओ.एस)
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू–560001

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पाठ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	नए सिरे से - (कहानी)	: -मोतिलाल जोतवानी	05-17
2.	महाभारत की एक सांझ' - (एकांकी)	: -भारतभूषण अग्रवाल	18-32
3.	कथा साहित्य में कामकाजी - महिला का स्वरूप - (निबंध)	: -प्रो. एम विमला	33-42
4.	अण्डमान तथा निकोबार द्वीप- समूह"-कालापानी"-(यात्रा वृत्तांत)	: -बबन फाले	43-49
5.	आनन्द के क्षण - (ललित निबंध)	: -कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	50-57
6.	सर सैयद अहमद ख़ान -(जीवनी)	: -प्रो.शैलेश ज़ैदी	58-61
7.	अपनी अपनी हैसियत - (व्यंग्य)	: -हरिशंकर परसाई	62-66
8.	वह चेहरा - (कन्नड़ कहानी) -	: - त. रा. सुब्बराव	67-77
9.	अनुवाद	वाणिज्यिक शब्दावली	78-79

1. नए सिरे से – (कहानी)

- डॉ. मोतीलाल जोतवाणी

लेखक परिचय :

(जन्म-13 जनवरी 1936 आरसी डब्ल्यू रोहरी, पाकिस्तान। मृत-28 जनवरी 2008 पुणे।)

मोतीलाल वधूमल जोतवानी भारतीय लेखक, शिक्षाविद्, गांधीवादी और हार्वर्ड डिविनिटी स्कूल के पूर्व पोस्ट डॉक्टरेट फेलो थे जो सिंधी भाषा साहित्य में विशेषज्ञता रखते थे। साहित्य अकादमी पुरस्कार के विजेता रहें। उन्हें 2003 में भारत सरकार द्वारा चौथे सर्वोच्च भारतीय नागरिक पुरस्कार पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

पुस्तकें: सिंध के सूफी, घास और जड़ों की: एक भारतीय लेखन, नियमिता: उपन्यासिका-त्रयी।

पुरस्कार: पद्म श्री; शाह अब्दुल लतीफ़ पुरस्कार; कृति पुरस्कार; साहित्य अकादमी पुरस्कार; सिन्धु रतन।

~@~@~

आज सुबह की डाक में आए पत्रो में से जो पहला पत्र मैंने खोला, तो मैं समझ नहीं पाया कि वह किसका था। उसमें नमस्कार युक्त संबोधन के बाद लिखा था- 'आप मुझे बिलकुल भूल गए होंगे। हम साल-भर पहले एक रेलगाड़ी-यात्रा में मिले थे। मुझे याद आता है, मैंने आपको अपना विजिटिंग कार्ड दिया था और आपने भी मेरे लिए काग़ज़ के एक पुर्जे पर अपना नाम व पता लिख दिया था'।

मैंने पत्र के नीचे लिखने वाले का नाम देखा, उसके ऊपर दाहिनी ओर पता व दिनांक भी पढ़ा! किसी सुरेखा दयाल ने मुंबई से तीन दिन पहले वह पत्र डाला था। सुरेखा

दयाल? कौन सुरेखा दयाल? रेल-यात्रा में कई लोग मिलते हैं। भला, हम उनमें से किस-किस को याद रखेंगे? कुछ लोग रेल-यात्रा के दौरान एक दूसरे के नज़दीक आ जाते हैं और आगे जीवन में संपर्क बनाए रखने के लिए विजिटिंग-कार्डों का आदान-प्रदान करते हैं। लेकिन वे विजिटिंग कार्ड गंतव्य स्थानों पर पहुंच कर रेल-टिकटों की तरह निरर्थक हो जाते हैं। लोग अपने-अपने कामों में लग जाते हैं और उन हमसफ़र लोगों को भूल जाते हैं।

मैंने पत्र में आगे पढ़ा, "मैंने वह पुर्ज़ा कई दिनों तक सम्हाल कर रखा था। फिर न जाने कहां गुम हो गया। अभी पिछले रविवार को अचानक ही मेरी इच्छा हुई कि मैं टालस्टॉय का उपन्यास 'अन्ना करेनिना' एक बार फिर पढ़ूं। मैंने लॉफ्ट पर से वह पुस्तक नीचे उतारी और ज्यों ही उसे झाड़-पोंछ कर खोला तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उसमें आपके नाम और पते बाला वह पुर्जा पड़ा था। मैंने ही उसे उसमें रखा था और मैं ही उसे वहां रखकर भूल गई थी। मुझे आपका पता पाकर बड़ी खुशी हुई।"

मेरी जिज्ञासा बढ़ गई। सुदूर मुंबई महानगर में ऐसी कौन महिला है, जिसने मुझे इस तरह याद किया है? मैंने पत्र क़ और आगे पढ़ा, "क्या आपको याद नहीं आता कि साल-भर पहले संयोगवश हम राजधानी एक्सप्रेस में मिले थे? सफ़र मुंबई से नई दिल्ली तक का था। तब मैं अपने माता-पिता और बहनों-भाइयों से मिलने दिल्ली जा रही थी और आप के पास वाली सीट पर बैठ कर आप के साथ बहुत सारी बातें करती रही। जब मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर आप उस चेअर-कार कंपार्टमेंट में अपनी सीट पर बैठने के लिए आगे बढ़े थे, तो

आप अपनी आरक्षित सीट पर मेरे साथ एक युवक को बैठा हुआ देखकर अचकचाकर खड़े हो गए थे। फिर उस युवक सुरेश ने आपके लिए वह सीट खाली कर दी थी। दरअसल, वह मुझे स्टेशन पर 'सी ऑफ' करने आया था। उस सफ़र के दौरान सुरेश के साथ मेरे संबंध को लेकर आप से बात हुई थी और आपने मुझे कहा था कि मुझे उस संबंध को 'रि-डिफाइन' (पुर्नपरिभाषित) करना होगा। मैं सफ़र की वह पूरी रात सो न सकी थी। वैसे भी मैं नींद न ले पाती, क्योंकि आप लंबे-लंबे खर्राटे मार रहे थे। सुरेश उस शाम को मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर मुझे कुछ दिनों के लिए 'सी आफ़' करने आया था। लेकिन मैंने अगले दिन की सुबह नई दिल्ली स्टेशन तक पहुंचते-पहुंचते उसे अपने शेष जीवन से ही 'सी आफ़' कर दिया था!"

अब मेरा माथा ठनका। अचानक ही मुझे सब कुछ याद हो आया। यह स्मरण-शक्ति भी एक अजीब चीज है। हम अपने जीवन-काल में न जाने कितने लोगों से मिलते हैं। उनमें से कई लोग याद करने पर भी याद नहीं आते और हम सर खुजाकर रह जाते हैं कि हम उनसे पहले कब कहाँ मिले थे। लेकिन इतने सारे लोगों में से कोई-कोई व्यक्ति स्मृति की परतों में कहीं टिककर रह जाता है। उस परत को ज़रा कुरेदा नहीं कि, वह वहाँ से उभर कर सामने आ जाता है। अब तो वह-सुरेखा दयाल? मेरे सामने स्पष्ट हो उठी। उसका चेहरा-मोहरा, रंग-रूप, आचार-विचार, सब कुछ याद हो आया। पत्र के अंत में लिखा था, 'इस बीच मैंने एक और युवक से विवाह कर लिया है। अब मैं कुमारी सुरेखा श्रीवास्तव न रहकर श्रीमती सुरेखा दयाल हूँ।

मि. दयाल यहाँ की एक कंप्यूटर इंजीनिरिंग कंपनी में काम करते हैं और मैं उसी अख़बार के फोटो-कंपोज़िंग विभाग में काम करती हूँ। हम दोनों कैसे मिले और फिर विवाह-बंधन में बंध गए, यह एक बड़ी दिलचस्प वार्ता है। जब मैं आपको यह पत्र लिखने बैठी हूँ, तो दयाल ने कहा कि मैं उनकी ओर से भी आपको निमंत्रण दूं कि आप जब कभी मुंबई आएं, हमसे भी मिलने का समय अवश्य निकालें। नया पता ऊपर दिया गया है। आप हमारे यहाँ आएंगे न? हम भी जब कभी दिल्ली आए, तो आपसे अवश्य ही मिलेंगे। वैसे भी आपको पता है, मेरे माँ-बाप दिल्ली में रहते हैं।

पत्र पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा। उसे पढ़ने के बाद मैंने उसे बड़े सलीके से एक किनारे रख दिया। फ़िर कवर मैं डाक में आए अन्य पत्र,पत्त्र-पत्रिकाएँ और विभिन्न संस्थाओं के निमंत्रण-यंत्र देखने-पढ़ने लगा। लेकिन उस समूचे कार्य-कलाप में सुरेखा मेरे ध्यान का केंद्र-बिंदु बनी रही। मेरी आँखों के सामने सत्रह घंटों की वह रेल-यात्रा जीवंत हो उठी।

गाड़ी चलने का समय हो गया था और मैं ऐन वक्त पर मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर पहुंचा। उस दिन जब मैं हड़बड़ाया हुआ चेअर-कार कंपार्टमेंट में अपनी रिजर्वड सीट की ओर बढ़ा, तो मैंने देखा, वहाँ एक युवक एक युवती के साथ पहले से विराजमान था। मैंने अपनी जेब से अपना टिकट निकालकर उस पर एक बार फिर अपना सीट नंबर देखा। हो न हो, मुझसे ही कोई गलती हो गई हो। ये दो सीटें तो इस युवा दंपती के लिए आरक्षित लगती हैं। इतने में वह युवक उस सीट से उठ खड़ा हुआ और बोला, 'यह जगह आपकी ही है। मैं तो इन्हें 'सी ऑफ' करने आया हूँ।' मुझे बड़ी राहत मिली। अधिक

राहत तब महसूस हुई, जब उसने मेरा अटैची केस मेरे हाथ से लेकर ऊपर लगेज-ब्रैकेट में क़रीने से लगा दिया। फिर उस युवक ने अपनी घड़ी में समय देखा और उस युवती से हाथ मिलाकर विदा ली। वह कंपार्टमेंट से नीचे उतर प्लेटफार्म पर जा खड़ा हुआ।

मैंने देखा, वह वहाँ हमारी सीटों के आसपास जा खड़ा हुआ था। सीटों पर बैठे हम उसे देख रहे थे। चूंकि राजधानी एक्सप्रेस की खिड़कियों के शीशे पारदर्शी नहीं होते, वह हमें कंपार्टमेंट के भीतर नहीं देख सकता था। इतने में गाड़ी चली और भीतर न देख सकने की उसकी यातना समाप्त हुई। उसने अंदाज़े से अपना हाथ ऊपर उठाकर मेरे पास बैठी हुई युवती को टा-टा किया और युवती ने भी हाथ झुलाकर उससे विदाई ली। ऐसे में उसकी आँखों में नमी आ गई थी।

अभी रेलगाड़ी ने फ्लाटफार्म में से लगभग एक सौ मीटर का फासला तय किया होगा कि वह रुक गई। थोड़ी देर के बाद वह लौटकर उसी फ्लाटफार्म पर आ गई। पता चला कि उसके इंजिन में कोई खराबी पैदा हो गई है। मैंने देखा, पास बैठी युवती की आंखें फ्लाटफार्म पर उसे ढूंढ रही थीं। वह उठकर कंपार्टमेंट के दरवाजे तक गई। और निराश होकर वापस अपनी सीट पर आ बैठी। मैंने एक दूसरे से विदा लेते समय उन दोनों का कष्ट देखा था। फिर अब अकेली युवती का वह कष्ट देखा। मुझसे रहा न गया। अनावास ही मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'कभी ऐसा नहीं हुआ है कि गाड़ी एक बार यों फ्लाटफार्म छोड़ दे और फिर वापस फ्लाटफार्म पर आ जाए।.. यह समझ कर कि गाड़ी मुंबई से चल दी है, आपके पाति स्टेशन से चले गए हैं।' उसने मेरी ओर देखा और कहा, "वह

मेरा पति नहीं हैं। मैं अभी अविवाहित हूँ।"

मुझे अपनी जल्दबाजी पर बड़ा ही पछतावा हुआ। लेकिन युवती ने यह भी तो नहीं कहा कि जी युवक उसे स्टेशन पर छोड़ने आया था वह उसका भाई था। फ़िर वह कौन था? अगर वह भी अविवाहित है, तो वह युवक कौन था? शायद उसका मित्र था। समाज बड़ी तेजी से बदल रहा है। अब यह बिलकुल ज़रूरी नहीं है कि एक युवती को स्टेशन पर विदा करने के लिए आया हुआ युवक उसका पति अथवा भाई हो। मैंने क्षण भर की ऊहापोह से बाहर आकर कहा, "मुझे माफ़ कीजिए, मैंने ग़लत समझा।"

युवती की आँखें अभी खिड़की के बाहर फ्लाटफार्म पर लगी थीं। उसने वहाँ से आँखें हटा कर उत्तर दिया, "कोई बात नहीं। सुरेश जिस ढंग से आपकी सीट को घेरे हुए बैठा था, उससे आपने ऐसा अंदाजा लगाया होगा।"

उसके उत्तर में बड़ी ही संवेदनशीलता थी। किसी अच्छे घर की लड़की लगती थी। लेकिन मुझे बड़ी झेंप महसूस हुई और मैं वहाँ उस तरह के बंद-बंद माहौल में बैठ न सका। अपनी झेंप मिटाने के लिए कंपार्टमेंट से नीचे उतर कर फ्लाटफार्म पर उसकी दृष्टि-परिधि से परे जाकर खड़ा हुआ। मैं तब तक भीतर नहीं गया, जब तक हमारी राजधानी एक्सप्रेस में उसके पीछे-पीछे आने वाली डुप्लीकेट राजधानी एक्स- प्रेस का इंजिन नहीं लगाया गया और वह वहाँ से नहीं हिली। इतनी देर फ्लाटफार्म पर रहकर मुझे पता चला था कि उस डुप्लीकेट राजधानी का नाम अगस्त-क्रांति एक्सप्रेस था और हमारी गाड़ी के पहले वाले ख़राब इंजिन को ठीक-ठाक कर उसे लगाने का फ़ैसला किया गया था। तुरंत ऐसी व्यवस्था

के बावजूद हमारी गाड़ी पचास मिनट देर से चली।

कंपार्टमेंट में जाकर अपनी सीट पर बैठने के बाद, मैंने थोड़ी देर पहले रेलवे बुक-स्टाल से खरीदी हुई एक पत्रिका के पृष्ठों में अपनी आंखें गढ़ा दी। अभी स्थानीय स्टेशन दादर भी नहीं आया था कि इतने में राजधानी एक्सप्रेस के पब्लिक-ऐड्रेस- सिस्टम पर उसके स्टाफ की बोर से हम सब यात्रियों का स्वागत किया गया और यह सूचना दी गई कि थोड़ी ही देर में अपनी-अपनी फरमाइश के अनुसार चाय या काफी दी जाएगी। मुझे यह सुनकर अच्छा लगा कि चाय के समय चाय मिलेगी। मैं पत्रिका के अंतिम साहित्य-सामग्री पृष्ठों पर प्रकाशित कहानी पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते मैंने देखा, उसमें छपाई की कई गलतियाँ रह गई थी। सोचा, कभी ये पाक्षिकाएं लेटर-प्रेस में छपती थीं और उस जमाने के प्रूफ़-रीडर गलतियों को जाने देने में अपनी तौहीन समझते थे। अब फोटो-कंपोजिग आ गया है और पत्र-पत्रिकाओं में कुछ ज्यादा ही मुद्रण-दोष पाए जाते हैं।

भला, शब्द को उसकी सही जगह पर न तोड़ कर आगे जाने वाली पंक्ति में, या प्रश्नवाची वाक्य का केवलमात्र वह अंतिम प्रश्नचिन्ह आगे दूसरी पंक्ति में ले जाने देना कहाँ की शराफ़त है? मैं अभी उन गलतियों को लेकर मन ही मन में खिन्न था कि मुझे उस कहानी को आगे पढ़ते हुए लगा कि उसमें जिस पैराग्राफ़ को उसके संदर्भानुसार ऊपर होना चाहिए था, वह पैराग्राफ़ नीचे आ गया था, जिससे कथा-प्रवाह में रुकावट पैदा हो गई थी। अब मुझसे न रहा गया और मैंने जेब से पेन निकाल कर उन गलतियों को हाशिए में दुरुस्त कर दिया और नीचे आए उस पैराग्राफ़ को तीर का निशान देकर

ऊपर उसकी सही जगह पर ले लिया। मेरी यह हरकत पास बैठी हुई उस युवती के ध्यान में आ गई। उसने काफी की चुस्की लेकर अनायास ही कहा, "इस कहानी में क्या इतने प्रिंटर्स एरर्स हैं?"

अभी मैं उत्तर देता कि उसने फिर पूछा, 'चलिए, इन अशुद्धियों की बात तो ठीक है, लेकिन आपको यह कैसे पता चला कि नीचे वाला यह पैराग्राफ़ ऊपर जाना चाहिए? आपके पास इस कहानी की ओरिजिनल कापी तो है नहीं।...

क्या आप इसके लेखक हैं?"।

मैंने पहली बार उसे भरपूर निगाह से देखकर "नहीं, मैं इसका लेखक नहीं हूँ। लेकिन क्या एक सजग पाठक को इस बात का पता नहीं चल सकता?"

"फिर तो मैं आपको मान गई!" वह खुशी से उछल-सी पड़ी। उसकी इस बेतकल्लुफ़ी से हमारी पंक्ति की दूसरी ओर तीन सीटों पर बैठे लोगों का ध्यान अनायास ही अपने-अपने कार्यकलाप से हट कर हम दोनों की ओर आकृष्ट हुआ। वे हमें देखने लगे। पर मैंने देखा, उस युवती को उससे कोई फर्क नहीं पड़ा।

वह सहजता से बोली, "मैं एक अख़बार के दफ़्तर में लेजर प्रिंटर पर काम करती हूँ! मुझे पता है, गलतियाँ क्यों होती हैं।"

मैंने जिज्ञासावश पूछा, "क्यों होती हैं ?"

उसने मेरे हाथ से पत्रिका लेकर मुझे समझाने के अंदाज़ में कहा, "गैलियों में प्रूफ़ ध्यान से पढ़े जाएं, तो लेज़र प्रिंटर के स्क्रीन पर ये गलतियाँ आसानी से सुधारी जा सकती हैं। लेकिन ये लोग प्रूफ़ ध्यान से पढ़ते ही नहीं। हम पर छोड़ देते हैं। फिर ऊपर का यह पैराग्राफ़ जो गलती से नीचे लग गया है,

वह इसलिए कि बीच में इस रंगीन चित्र के आ जाने से ब्रोमाइड -पेपर की गैली के पिछले बचे हुए टुकड़े को लेआऊट शीट पर उसके सही स्थान पर चस्पा नहीं किया गया। यह ग़लती इस पत्रिका में काम करने वाले किसी उप-संपादक की है।"

मैंने पूछा, "अच्छा, तो आप यह सारा काम बख़ूबी जानती हैं। बड़ा ही दिलचस्प काम है! "मुझे लगा यह सुनकर जैसे उसके मुँह का ज़ायक़ा बिगड़ गया हो, मुँह में काफ़ी का टेस्ट ख़राब हो गया हो।

बोली, "आप वही-वही काम हर रोज़ करते रहें तो वह आपके लिए दिलचस्प नहीं रह जाता।"।

फिर तो हम दोनों में काफ़ी बातें हुई। प्याज के छिलकों की तरह बात पर बात निकलती चली गई। उसमें युवावस्था-सुलभ उत्साह भरा था। बातों-बातों में उसने बताया कि उसका मूल निवास दिल्ली में था। उसने दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ कालेज से बी. ए. पास कर एन.आइ.आई.टी. से कंप्यूटर में प्रशिक्षण लिया था। मुंबई में उसकी नौकरी थी और वहाँ बांद्रा में वह अन्य दो लड़कियों के साथ किराए के मकान में रहती थी, आदि-आदि। राजधानी एक्सप्रेस की पेंट्री के बैरों ने हमारी सीटों के आगे रात का खाना लगा दिया था। खाना शुरू करने से पहले उसने अपनी थाली में से दही का कप निकाल कर मेरी थाली में रख दिया और कहा, "आपको दही अच्छा लगता हो, तो यह भी ले लें। मैं दही नहीं खाती।"

मैंने कहा, 'ठीक है।' कहने को तो कहा, लेकिन मुझे ख़ुद भी वहाँ का दही अच्छा नहीं लगता था। उस समय मैं कुछ और सोच रहा था और अन्य मनस्कता की स्थिति में मेरे मुंह से 'ठीक है' निकल गया था।

मैंने पूछा, 'सुरेखा जी, आपसे एक बात पूछूं?'

उसने तपाक से उत्तर दिया, "अंकिल, सुरेखा के साथ यह 'जी' और मेरे लिए यह 'आप' मुझे-विलकुल पसंद नहीं है।"

मैंने कहा, "अच्छा... तुमसे एक बात पूछूं?" अब वह चपलाता का भाव छोड़कर किंचित गंभीर हो गई। बोली, "पूछिए।"

"जो युवक तुम्हें बांबे सेंट्रल स्टेशन पर छोड़ने आया था, वह तुम्हारा क्या लगता है ?" मैंने पूछा।

"मेरा बाय-फ्रेंड है। क्यों, उसे लेकर ऐसा क्या हुआ है?"

"हुआ तो कुछ नहीं है। पर जिस तरह की तुम्हारी फ़ीलिंग मैंने उसके प्रति देखी, उससे लगा कि तुम दोनों को एक दूसरे से बहुत प्यार है।"

"हाँ, वह तो है," फिर क्षणांश के पश्चात् सुरेखा बोली, 'लेकिन इधर दो-ढाई महीनों से हम बड़े पसोपेश में हैं।'

"क्यों, तुम दोनों के विवाह में कोई अड़चन है?"

'यही तो मैं आपको बता रही थी।... अपने माँ-बाप के दबाव में आकर उसने दो-कई महीने पहले विवाह कर लिया। उसने विवाह तो कर लिया, पर उसका मुझसे धनिष्ठ प्रेम-संबंध है। अब आप बताएँ, हम क्या करें।'

उसकी यह बात सुनकर मैं सन्नाटे में गया। मुझसे उत्तर में एकदम ही कुछ कहते न बना। मेरे मन में उस युवक को लेकर एक आशंका पैदा हो गई। मैंने उससे पूछा, 'क्या वह तुमसे अब भी प्रेम-संबंध बनाएँ रखना चाहता है ?'

"हाँ।.... परंतु, मैं भी तो सुरेश के बिना नहीं रह सकती !"

ऐसे में मुझे जिस बात की आशंका थी, उन दोनों के वीच वही हो रहा था। उस युवक का नाम सुरेश था। सुरेखा ने

उसे लेकर उसका सीधे-सीधे बचाव करना भी चाहा रही थी। मैंने उसकी आंखों में निहार कर कहा, "पता नहीं, इस संबंध में मुझे कुछ कहना चाहिए या नहीं।"

वह व्यग्र हो उठी। उसने कहा, "आप न कहिए !"

मैंने कहा, "उसने दबाव में आकर विवाह किया और अपने प्रेम का त्याग किया, वह एक कमज़ोर व्यक्ति है। वह उस त्याग किए हुए प्रेम का भोग करना भी चाहता है,वह बड़ा स्वार्थी भी है।.... इस उम्र में तुम्हारे लिए यह महसूस करना बड़ा स्वाभाविक है कि तुम उसके बिना नहीं रह सकती। लेकिन तुम्हें इस संबंध को रिडिफाईन करना होगा ।"

सुरेश के लिए और दोनों को लेकर मेरी दो-टूक बात से उसे झटका-सा लगा। जैसे किसी तालमेल में भूकंप हुआ हो। वह हिल गई थी। कुछ क्षणों के लिए वह मुझे घूर-घूर कर देखती रही। उसने मुझ पर से आँखें हटा लीं,तो वे आंखें हटी ही रहीं।

उसके बाद उस रात गाड़ी में हम दोनों में कोई बात नहीं हुई। मुझे लगा, वैसे मैं ने उसके ताल मेल के संसार में भूकंप लाने के बाद आग भी लगा दी हो। उसने अपने आप को मुझ से कहीं दूर समेट लिया था और मैं अपने को अपनी ही सीट पर अनचाहा-अनचाहा, पराया-पराया महसूस करने लगा। गाड़ी में तेज पीली रोशनी के बजाय हल्की नीली रोशनी कर दी गई और मैं यह सोचते-सोचते सो गया कि एक सफ़र में दो व्यक्ति मिले थे और वे उस सफ़र के दौरान ही जुदा भी हो गए। मैंने श्री सुरेखा को झटक कर अपने मन से अलग कर दिया।

अगले दिन सुबह, सुरेखा और मेरे बीच कोई तनाव नहीं रहा था। उसे मेरे प्रति कोई नाराजगी न थी। वह नई सुबह बड़े ही खुशगवार तरीक़े से शुरू हुई। जब सुबह की चाय पी जा रही थी, तो उसने ही मुझे नींद से जगाया।

उसने आवाज दी, "अंकिल, उठिए। चाय आ गई है।"

मैंने जागकर उसे देखा, उसने कंघी कर बाल संवारे थे। वह बड़ी ही तरो-ताजा लग रही थी। मेरे मन में आया, मैं कुर्सी पर पसरा हुआ देर तक सोया था। वह कैसे मुझे लांघ-फलांग कर टायलेट वगैरह गई होगी? मैंने शर्मिंदगी महसूस करते हुए उससे कहा, "आपको मेरे यों कुर्सी पर सोने से बड़ी तकलीफ़ हुई होगी। मुझे समय पर जगा देतीं।"

उसने जोर देकर कहा, "फिर आप मुझसे 'आप-आप' कहकर बात करने लगे! आप गहरी नींद में सो रहे थे, मैं आपको कैसे जगाती? अब जब मथुरा स्टेशन भी निकल गया तो..."

"अरे, मथुरा स्टेशन भी निकल गया? फिर तो दिल्ली दूर नहीं है।" और मैंने सुबह की चाय की पहली चुस्की ली। वैसे सफ़र के आखिरी डेढ़-दो घंटे बड़ी मुश्किल से कटते हैं। पर हमारा समय बातों-बातों में कैसे बीत गया, हमें उसका पता ही न चला। उसने मुझे अपना विजिटिंग कार्ड दिया और मैंने भी उसके लिए काग़ज़ के एक टुकड़े पर अपना पूरा नाम व पता लिख दिया।

जब हज़रत निजामुद्दीन स्टेशन आ गया, तो वह मुझे कंपार्टमेंट के दरुवाजे तक छोड़ने आई। गाड़ी से नीचे उत्तरने के बाद उससे विदा होते समय मेरे ज़ेहन में एक बिंब उतरा और मैंने उसका दूर तक विश्लेषण न कर उसे हंसी-हंसी में

कहा, "सुरेखा, जब कल बांबे सेंट्रल स्टेशन पर हमारी इस गाड़ी का इंजिन खराब हो गया था, तो उसे बदल दिया गया था न? हम उस खराब इंजिन के लगाव में कब तक वहाँ फंसे रहते? तुम भी अपने बारे में नए सिरे से सोचो।"

वह मुस्करा दी और बोली, 'मैं सारी रात सोई नहीं, आपकी बात पर विचार करती रही। मैं समझ गई हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए ।'

गाड़ी प्लेटफार्म से चलने लगी और हम एक दूसरे से हाथ मिलाकर विदा हुए ।

~@~@~

2. महाभारत की एक सांझ' - (एकांकी)

- भारतभूषण अग्रवाल

लेखक परिचय:

भारतभूषण अग्रवाल (1919-1975) मूलतः कवि हैं। उन्होंने प्रयोगवादी कवि के रूप में अपनी पहिचान करायी है। सुप्रसिद्ध कवि - आलोचक के शब्दों में उनकी कविता" मानवीय स्थिति का सजग और संवेदनशील विश्लेषण करते हुए भी आत्मीय और मानवीय गरमाहट भरी" नज़र आती हैं। नौ काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। भारत भूषण एक सफल एकांकीकार भी हैं।

प्रमुख रचनाएँ : एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है पद्य-रूपक : सेतु-बंधन एकांकी-संग्रह और खाई बढ़ती गई'।

(यह नाटक यहाँ श्रव्य रूप में ही प्रस्तुत किया गया है: जैसा रेडियो द्वारा प्रसार के लिए होता है, पर इसे सहज ही मंच पर दृश्याभिनय के अनुकूल बनाया जा सकता है।) (सारंगी पर आलाप उठता है)

पात्र : धृतराष्ट्र – संजय – युधिष्टिर – भीम - दुर्योधन ।

समय : सांझ

स्थान : कुरुक्षेत्र के निकट द्वैतवन के जलाशय का किनारा।

धृतराष्ट्र : (ठण्डी साँस लेकर) कह नहीं सकता किसके पापों का परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका यह भीषण विषफल हमें मिला। ओह! क्या पुत्र-स्नेह अपराध है, पाप है? क्या मैंने कभी भी.... कभी भी...

संजय : शान्त हो महाराज! जो हो चुका, उस पर शोक करना व्यर्थ है।

धृतराष्ट्र : (सांस लेकर) फिर क्या हुआ संजय ?

संजय : आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवन के सरोवर में घुस गए और उसके जल-स्तम्भ में छिप कर बैठे रहे। पर न जाने कैसे पांडवों को इसकी सूचना मिल गई और वे तत्काल रथ पर चढ़कर वहां पहुंच गए। (रथ की गडगडाहट)

भीम : लीजिए महाराज! यही है द्वैतवन का सरोवर। वे अहेरी कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन को इसी जल में छिपते हुए देखा! आओ, हम लोग उसे बाहर निकालने की चेष्टा करें।

युधिष्ठिर : (जल की कल-कल ध्वनि) (पुकारकर) ओ पापी! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या कायरों की भांति यहाँ जल में छिपकर बैठा है! बाहर निकल। आ जा। देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है !

भीम : कोई उत्तर नहीं। (जोर से) दुर्योधन। दुर्योधन। अरे, अपने सारे सहयोगियों की हत्या का कलंक अपने माथे पर लगा कर तू कायरों की भांति अपने प्राण बचाता फिरता है। तुझे लज्जा नहीं आती।

युधिष्ठिर : लज्जा। उस पापी को लज्जा। भीमसेन ऐसी अनहोनी बात की, तुमने कल्पना भी कैसी की? जो अपने सगे-संबंधियों को गाजर-मूली की भांति कटवा सकता है, जो अपने भाइयों को जीवित जलवा देने में भी नहीं हिचकिचाता, जो अपनी भाभी को भी भरी सभा में अपमानित करने में आनंद ले सकता है, उसका लज्जा से क्या परिचय! (सव्यंग्य हँसी ।)

दुर्योधन : (दूर जल में से) हँस लो, हँस लो दुष्टों। जितना जी चाहे, हँस लो। पर न भूलना कि मैं अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओं का बल अभी नष्ट नहीं हुआ है।

युधिष्ठिर : (जोर से) अरे नीच अभी तेरा गर्व चूर नहीं हुआ! यदि बल है तो फिर आ न बाहर, और हमको पराजित करके राज्य प्राप्त कर। वहाँ बैठा-बैठा क्या वीरता बघारता है। तू क्या समझता है, हम तेरी थोथी बातों से डर जाएंगे?

दुर्योधन : अपने स्वार्थ के लिए अपने गुरुजनों, बन्धु-बान्धवों का निर्ममता से वध करनेवाले महात्मा पाण्डवों के रक्त की प्यास अभी बुझी नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर युधिष्ठिर, सुयोधन कायर नहीं है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नहीं कर सकता।

भीम : तो फिर आ न बाहर दिखा अपना पराक्रम; जिस कालाग्नि को तूने वर्षों घृत देकर उभारा है, उसकी लपटों में तेरे साथी तो स्वाहा हो गए, उसके घेरे से अब तू क्यों बचना चाहता है? अच्छी तरह समझ ले, यह तेरी आहुति दिए बिना शांत न होगी।

दुर्योधन : जानता हूँ युधिष्ठिर! भली भांति जानता हूँ, सोच लो, मैं थक कर चूर हो गया हूँ, मेरी सारी सेना तितर-बितर हो गयी है, मेरा कवच फट गया है, ये शस्त्राश्त्र चुक गए हैं। मुझे समय दो युधिष्ठिर; क्या भूल गए, मैंने तुम्हें तेरह वर्ष का समय दिया था?

युधिष्ठिर : (हंसकर) तेरह वर्ष का समय दिया था, दुर्योधन तुमने तो हमें वनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष वन में रहकर हमारा उत्साह ठंडा पड़ जायेगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी, हमारे सहायक बिखर जाएंगे और तुम अनायास हम पर विजय पा सकोगे। इतनी आत्म प्रवंचना न करो।

दुर्योधन : युधिष्ठिर, तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा

दम्भ है कि तुम अधर्म नहीं करते फिर तुम्हारे रहते तुम्हारी आँखों के आगे ऐसा अधर्म हो, सोचों तो।

भीम : (हॅसी में) अच्छा, तो अब तुझे धर्म का स्मरण हुआ। सच है कायर और पराजित ही अंत में धर्म का स्मरण कर लेता है।

युधिष्ठिर : अरे पामर! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था, जब एक निहत्थे बालक को सात-सात महारथियों ने मिलकर मारा थाः जब आधा राज्य तो दूर, सुई की नोक के बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्म से इस पुण्य लोक भारत भूमि में द्वेष की ज्वाला धधकाकर अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञान को! धिक्कार है तेरी वीरता को !

दुर्योधन : एक निहत्थे, थके हुए व्यक्ति को घेरकर वीरता का उपदेश देना सहज है युधिष्टिर! मुझे खेद है, मैं इसके लिए तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता। पर मैं सच कहता हूँ तुमसे, इस नर हत्याकांड से मुझे विरक्ति हो गई है। इस रक्त-रंजित सिंहासन पर बैठकर राज्य करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चित से जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वन में जाकर भगवद् भक्ति में दिन बिताएगा।

भीम : व्यर्थ है दुर्योधन, तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है। अपने पापों के परिणामों से अब तू किसी भी प्रकार बच नहीं सकता। बाहर निकलकर युद्ध कर, बस यही एक मार्ग है।

दुर्योधन : अप्रस्तुत को मारने से यदि तुम्हें संतोष मिलता है, तो लो मैं बाहर आता हूँ। (जल से निकल कर बाहर आने तक की आवाज़े) पर मैं पूछता हूँ युधिष्ठिर, मेरे प्राणों का नाश कर तुम्हें क्या मिल जाएगा?

युधिष्ठिर : अरे पापी यदि प्राणों का इतना मोह था, तो यह फिर महाभारत क्यों मचाया? न्याय को ठोकर मारकर अन्याय का पथ क्यों ग्रहण किया?

दुर्योधन : युधिष्टिर ! मैंने जो कुछ किया, अपनी रक्षा के लिए किया! मैं जीना चाहता था, शांति और मेल से रहना चाहता था। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे रहते यह मेरी कामना, यह सामान्य-सी इच्छा भी पूरी न हो सकेगी।

भीम : पाखण्डी! तुझे झूठ बोलते लज्जा नहीं आती।

दुर्योधन : ले लो राक्षसों! यदि तुम्हारी हिंसा इसी से तृप्त होती है तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो। जहाँ मैं जीवन भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घड़ी शांति से न बिता सका, जब मैं अपनी एक भी कामना को फलते न देख सका, तो अब इन प्राणों को रखकर भी क्या करूँगा! लो उठाओ शस्त्र और उड़ा दो मेरा शीश! अब देखते क्या हो! मैं निहत्था तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ! ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवन शत्रुओं!

युधिष्ठिर : पहले वीरता का दम्भ और अंत में करुणा की भीख! कायरों का यही नियम है! परंतु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो! हम तुम्हें दया करके छोडेंगे भी नहीं और तुम्हारी भांति अधर्म से हत्या कर वधिक भी न कहलाएँगे। हम तुम्हें कवच और अस्त्र देंगे। तुम जिस अस्त्र से लड़ना चाहो बता दो। हममें से केवल एक व्यक्ति ही तुम से लड़ेगा। और यदि तुम जीत गए तो सारा राज्य तुम्हारा! कहो, यह धर्म नहीं है? स्वीकार है?

भीम : इस दुराचारी के साथ ऐसा व्यवहार बिलकुल अनावश्यक है?

दुर्योधन : मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठिर। मुझे विरक्ति हो

गयी है। मेरी समझ में आ गया है कि अब प्राणों की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विफलता के इस मरुस्थल में अब एक बूंद आयेगी भी तो सूखकर खो जाएगी। यदि तुम्हें इसमें संतोष हो कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा मेरी मृत देह पर ही अपना जय-स्तंभ उठाए तो फिर यही सही (साँस लेकर) चलो, यह भी एक प्रकार से अच्छा ही होगा। जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों की बलि दी, उन्हें मुंह तो दिखा सकूंगा (रुककर) अच्छी बात है युधिष्ठिर। मुझे, एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष ?

(लघु विराम)

संजय : इस प्रकार महाराज! पाण्डवों ने विरक्त सुयोधन को युद्ध के लिए विवश किया। पाण्डवों की ओर से भीम गदा लेकर रण में उतरे। दोनों वीरों में घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधन का पराक्रम सबको चकित कर देता था। ऐसा लगता था मानो विजयश्री अंत में उन्हीं का वरण करेगी। पर तभी श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने सुयोधन की जंघा में गदा का भीषण प्रहार किया। कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पड़े।

घृतराष्ट्र : हाय पुत्र। इन हत्यारों ने अधर्म से तुम्हें परास्त किया। संजय मेरे इतने उत्कट स्नेह का ऐसा अंत। ओह, मैं नहीं सह सकता। मैं नहीं सह सकता......

संजय : धैर्य, महाराज, धैर्य। कुरुकुल के इस डगमगाते पोत के आप ही कर्णधार हैं।

धृतराष्ट्र : संजय। बहलाने की चेष्टा न करो। (रुककर) पर ठीक कहा तुमने, कुरुकुल का कर्णधार ही अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता।

संजय : महाराज। ठीक यही बात सुयोधन ने कही थी। क्या?

धृतराष्ट्र : क्या कहा था सुयोधन ने? कब? जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमि पर गिर पड़े, तो पाण्डव जय-ध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविर को लौट गए। संध्या होने पर पहले अश्वत्थामा आए और कुरुराज की यह दशा देखकर बदला लेने का प्रण करते हुए चले गये। फिर युधिष्ठिर आए। सुयोधन के पास आकर वे झुके और शांत स्वर में बोले।

युधिष्ठिर : दुर्योधन! दुर्योधन !! आँखें खोलो भाई।

दुर्योधन : (कराहते हुए) कौन युधिष्टिर। युधिष्ठिर तुम! तुम आए हो? क्यों आये हो? अब क्या चाहते हो? तुम राज्य चाहते थे, वह मैंने दे दिया। मेरे प्राण चाहते थे, वे भी मैंने दे दिए। अब क्या लेने आये हो मेरे पास? अब मेरे पास ऐसा कौन-सा धन है जिसके प्रति तुम्हें ईर्ष्या हो? जाओ, जाओ, दूर हो मेरी आँखों से। जीवन में तुमने मुझे चैन नहीं लेने दिया, अब कम से कम मुझे शांति से मर तो लेने दो युधिष्टिर। जाओ! चले जाओ!!

युधिष्ठिर : तुमने गलत समझा दुर्योधन? मैं कुछ नहीं लेने आया! मैं तो देखने आया था कि ....

दुर्योधन : कि अंतिम समय में मैं किस तरह निस्सहाय, निर्बल पशु की भाँति तड़प-तड़पकर अपना दम तोड़ता हूँ? मेरी मृत्यु का पर्व मनाने आये हो? मेरी आहों का आलाप सुनने आए हो! अरे निर्दयी। तुम्हें किसने धर्मराज की संज्ञा दी। जो सुख से मरने भी नहीं देता, वही धर्म का ढोल पीटे, कैसा अन्याय है।

युधिष्ठिर : अर्थ का अनर्थ न करो दुर्योधन। मैं तो तुम्हें शांति देने आया था। मैंने सोचा, हो सकता है तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा हो! यदि ऐसा हो तो तुम्हारी व्यथा हल्की कर सकूं, इसी

उद्देश्य से मैं आया था।

दुर्योधन : हाय रे मिथ्याभिमानी! अब भी यह दया का ढोंग नहीं छोड़ा? पर युधिष्ठिर! तनिक अपनी ओर तो देखो। पश्चात्ताप तो तुम्हें होना चाहिए! मैं क्यों पश्चात्ताप करूंगा? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है? मैंने अपने मन के भावों को तुमसे गुप्त नहीं रखा, मैंने षड्यन्त्र, गुरुजनों का वध नहीं किया!

युधिष्ठिर : यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन?

दुर्योधन : (दांत किटकिटाकर) दर्योधन नहीं, सुयोधन कहो धर्मराज! क्या अब भी तुम्हारी छाती ठंडी नहीं हुई? क्या मुझे मारकर भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ, जो मेरी अंतिम घड़ी में मेरे मुँह पर मेरे नाम की खिल्ली उड़ा रहे हो? निर्दयी क्या ईर्ष्या में अपनी मानवता भी भस्म कर दी।

युधिष्ठिर : क्षमा करो भाई । अब तुम्हें और अधिक कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता, पर मेरे कहने न कहने से क्या. आनेवाली पीढ़ियां तुम्हें दुर्योधन के नाम से ही संबोधित करेगी, तुम्हारे कृत्यों का साक्षी इतिहास पुकार-पुकारकर.....

दुर्योधन : मुझे दुर्योधन कहेगा, यही न? जानता हूँ युधिष्टिर! मैं जानता हूँ। मुझे मारकर भी तुम चुप नहीं बैठोगे। तुम विजेता हो, अपने गुरुजनों और सगे-संबंधियों के शोणित की गंगा में नहाकर तुमने राजमुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख-रेख में इतिहास लिखवाओगे और उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने से क्यों चूकोगे। सुयोधन को सदा के लिए दुर्योधन बनाकर छोड़ोगे। (कराहकर) उसकी देह को ही नहीं, उसका नाम तक मिटा दोगे। यह अच्छी तरह जानता हूँ। (रुककर) मेरे मरने पर तुम जी चाहे जो करना, मैं तुम्हारे हाथ पकड़ने नहीं आऊँगा। पर इस समय, जब तुम्हारा सबसे बड़ा

शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर : युधिष्ठिर ने सदा ही न्याय दिया है सुयोधन! न्याय के लिए वह बड़े-बड़े दुःख उठाने से भी नहीं चूका है। सगे-संबंधियों के तड़प-तड़पकर प्राण त्यागने का यह भीषण दृश्य, अबलाओं अनाथों का यह करुण चीत्कार किसी भी हृदय को दहलाने के लिए पर्याप्त था। पर सुयोधन। मैं इन संहार के दृश्यों को भी शांत भाव से सह गया, क्योंकि न्याय के पथ पर जो मिले, सब स्वीकार है।

दुर्योधन : यह दम्भ है युधिष्ठिर। यह मिथ्या अहंकार है। मैं तुम्हारी यह आत्म-प्रशंसा नहीं सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तों के लिए रहने दो। तुम विजय की डींग मार रहे हो, पर न्याय धर्म की दुहाई मत दो, स्वार्थ को न्याय का रूप देकर धर्मराज की उपाधि धारण करने में तुम्हे संतोष मिलता है तो मिले, मेरे लिए वह आत्म-प्रवंचना है। मैं उससे घृणा करता हूँ।

युधिष्ठिर : स्वार्थ। दुर्योधन, स्वार्थ !!

दुर्योधन : और नहीं तो क्या? जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती-भर अधिकार नहीं था, उसको पाने के लिए तुमने युद्ध ठाना, यह स्वार्थ का तांडव नृत्य नहीं तो भला किस न्याय से तुम राज्याधिकार की मांग करते थे?

युधिष्ठिर : सुयोधन, मन को टटोलकर देखो। क्या वह तुम्हारे कथन का समर्थक है। क्या तुम नहीं जानते कि पिता के राज्य पर पुत्र का अधिकार सर्वसम्मत है? फिर महाराज पाण्डु का राज्य मेरा हुआ या नहीं?

दुर्योधन : अब, तुम्हारे पास एक ही तर्क है न! परंतु युधिष्ठिर, क्या तुमने कभी यह भी सोचा कि जिस राज्य का तुम अधिकार

चाहते थे यह तुम्हारे पिता के पास कैसे आया? क्या जन्माधिकार से? नहीं! तुम्हारे पिता को राज्य की देखभाल का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे। राज्य-संचालन में उन्हें असुविधा होती। अन्यथा उस पर तुम्हारे पिता का कोई अधिकार न था। वह मेरे पिता का था।

युधिष्ठिर : यह तो ठीक है। पर एक बार चाहे किसी भी कारण से हो, जब मेरे पिता को राज्य मिल गया तो उसके पश्चात् उस पर मेरा अधिकार हुआ नहीं? क्या राज-नियम यह नहीं कहता?

दुर्योधन : राज-नियम की चिंता कब की तुमने? अन्यथा इस बात को समझने में क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिता के उपरांत राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिता का ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्था के लिए सौंप सकते थे।

युधिष्ठिर : यह केवल तुम्हारा निजी मत है। आज तक किसी ने भी इस प्रकार का कोई सन्देह प्रकट नहीं किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचार्य अथवा स्वयं महाराज धृतराष्ट्र ने भी कभी ऐसी कोई बात नहीं कही।

दुर्योधन : यही तो मुझे दुःख है युधिष्ठिर कि तथ्य तक पहुंचने की किसी ने भी चेष्टा नहीं की। एक अन्याय की प्रतिष्ठा के लिए इतना ध्वंस किया गया और सब अन्धों की भांति उसे स्वीकार करते गये। सबने मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्ष का न्याय किसी ने नहीं देखा। और जानते हो, इसका क्या कारण था ?

युधिष्ठिर : क्या ?

दुर्योधन : सब तुम्हारे गुणों से प्रभावित थे। सब तुम्हारी वीरता से डरते थे। कायरों की भांति, रक्तपात से बचने के प्रयत्न में न्याय और सत्य का बलिदान कर बैठे। वे यह नहीं

समझ पाए कि भय जिसका आधार हो, वह शांति टिकाऊ नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर : गुरुजनों पर तुम व्यर्थ ही कायरता का आरोप लगा रहे हो। यदि मेरे पक्ष में न्याय नहीं होता तो कोई भी मुझको राज्य देने की मांग क्यों करता ।

दुर्योधन : तभी तो मैं कहता हूँ युधिष्ठिर, कि स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा बना दिया, अन्यथा इतनी छोटी-सी बात क्या तुम्हें दिखाई न पड़ जाती कि जितने धार्मिक और न्यायी व्यक्ति थे, सबने इस युद्ध में मेरा साथ दिया है। यदि न्याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म, द्रोण, कृपा, अश्वत्थामा सब मेरी ओर से क्यों लड़े? क्या वे जान-बूझकर अन्याय का साथ दे रहे थे? यहाँ तक कि कृष्ण जैसे तुम्हारे परम मित्र ने भी मेरी सहायता के लिए अपनी सेना दी। वे चतुर थे, दोनों पक्षों से मैत्री रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। ऐसा क्यों हुआ बोलो। इसीलिए ना, कि न्याय वास्तव में मेरी ओर था ?

युधिष्ठिर : सुयोधन। मैं तुम्हें सांत्वना देने आया था, विवाद करने नहीं। मैं तो तुम्हारी पीड़ा बंटा लेने आया था। क्योंकि तुम चाहो जो समझो, मेरी इस बात का तुम विश्वास करो कि मैं इस रक्तपात के लिए तैयार न था, यह मेरी कदापि इच्छा नहीं थी।

दुर्योधन : मैं इसका कैसे विश्वास करूँ? क्या तुम्हारे कह देने से ही? पर तुम्हारे वचनों से भी सशक्त स्वर है तुम्ह रे कार्यों का, तुम्हारे जीवन की गतिविधि का और वह पुकार-पुकारकर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित-तर्पण चाहता था। युधिष्ठिर खून की होली खेलने के लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था। भविष्य को भी तुम चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर! पर

सुयोधन को नहीं बहका सकते। क्योंकि उसने अपने बचपन से लेकर अब तक की एक-एक घड़ी तुम्हारी ईर्ष्या के रथ की गड़गड़ाहट सुनते हुए बिताई है, तुम्हारी तैयारियों ने उसे एक रात भी चैन से सोने नहीं दिया।

युधिष्ठिर : सुयोधन ! लगता है. तुम सुध-बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो। भला ज्ञान में भी कोई ऐसी असंभाव्य बात कहता है जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर-घर भीख माँगते फिरे, जंगलों की धूल छानते फिरे, उनके संबंध में भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथन का विश्वास करेगा।

दुर्योधन : मैं जानता हूँ युधिष्ठिर! कोई विश्वास नहीं करेगा। और करना चाहे तो तुम उसे विश्वास करने न दोगे। पर इससे क्या, सत्य को दबाकर उसे मिथ्या नहीं किया जा सकता। बचपन से जब हम लोगों ने एक साथ शिक्षा पाई, तब से आज तक के सारे चित्र मेरी दृष्टि में हरे हैं। पुरोचर को कपट से मारकर तुम पांचाल गए और वहां द्रुपद को अपनी ओर मिलाया। तभी तो तुम्हारा बल बढ़ता देखकर पिताजी ने तुम्हें आधा राज्य दिया।

युधिष्ठिर : मैं तो यही जानता हूँ कि आधे राज्य पर मेरा अधिकार था।

दुर्योधन : सत्य को ढकने का प्रयत्न न करो युधिष्ठिर ! उसे निष्पक्ष होकर जांचो। मेरे पास प्रमाणों की कमी नहीं है। आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया तुमने अर्जुन को चारों ओर दिग्विजय के लिए भेजा। राजसूय यज्ञ के बहाने तुमने जरासंध और शिशुपाल को समाप्त किया। यहाँ तक कि जुए में खेल-खेल में भी अपनी ईर्ष्या नहीं भूले और तुमने चट से अपना राज्य दांव पर लगा दिया ताकि यदि तुम जीते तो तुम्हें

मेरा राज्य अनायास ही मिल जाए। वनवास उसी महत्वाकांक्षा का परिणाम था। मेरा उसमें कोई हाथ न था।

युधिष्ठिर : तुमने जिस तरह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया....

दुर्योधन : मेरा अपमान भी द्रौपदी ने भरी सभा में किया था। तब तुम्हारी यह न्याय-भावना क्या सो रही थी? फिर द्रौपदी को दांव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करने की चेष्टा की थी? जिस समय द्रौपदी सभा में आई, उस समय वह द्रौपदी नहीं थी, वह जुए में जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर : यह तुम कैसी विचित्र बात कर रहे हो।

दुर्योधन : सत्य को विचित्र मानकर झुठला नहीं सकते युधिष्ठिर! अपने ही कृत्य से वनवास पाकर भी उसका दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया और फिर उस वनवास का एक-एक क्षण युद्ध की तैयारी में लगाया गया। अर्जुन ने तपस्या द्वारा नये-नये शस्त्र प्राप्त किये, विराटराज से मैत्री कर नये संबंध बनाये गये और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्यु के विवाह के बहाने सारे राजाओं को निमंत्रण भेजकर एकत्र किया गया। युधिष्ठिर क्या इस कटु सत्य को मिटा सकते हो?

युधिष्ठिर : यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है सुयोधन, तुम मेरा विश्वास करो कि तुमने प्रत्येक घटना के उलटे अर्थ लगाए हैं। जो नहीं है उसे तुमने कल्पना के द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधनः किन्तु यही बात मैं तुम्हारे लिए कह सकता हूँ युधिष्ठिर। क्योंकि अन्तर्यामी जानते हैं कि मैंने कोई बुरा आचरण नहीं करना चाहा। मैंने एक-मात्र अपनी रक्षा की। जब तक तुमने आक्रमण नहीं किया, मैं चुप रहा। जब मैंने देखा कि

युद्ध अनिवार्य है, तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्तव्य करना पड़ा।

युधिष्ठिर : अभिमन्यु - वध भी क्या वीरोचित था।

दुर्योधन : एक-एक बात पर कहाँ तक विचार करोगे युधिष्ठिर। जब भीष्म, द्रोण और कर्ण का वध न्यायोचित हो सकता है, तो फिर अभिमन्यु-वध में ऐसी क्या विशेषता थी? और आज भीमसेन ने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है, वही क्या वीरोचित कहलाएगा? पर युधिष्ठिर। मेरे पास अब इतना समय नहीं है कि सबकी विवेचना करूं। मैं तो सबकी सारी बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा ही इस नर संहार का, इस भीषण रक्तपात का मुख्य कारण है। मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्ति की भांति केवल जूझ पड़ा हूँ। तुम्हारे चक्रान्त में मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था।

युधिष्ठिर : सुयोधन, तुम्हें भ्रान्ति हो गयी है। तुम सत्य और मिथ्या में भेद करने में असमर्थ हो। तुम्हारे मस्तिष्क की यह दशा सचमुच दयनीय है।

दुर्योधन : बड़े निष्ठुर हो युधिष्ठिर। मरणोन्मुख भाई से दुराव करते तुम्हारा जी नहीं पसीजता। कुछ क्षणों में ही मैं इस लोक की सीमाओं के परे पहुंच जाऊंगा। मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजस्व को हानि नहीं पहुँचेगी। (कराहता है) पर नहीं, मैं भूल गया। तुम तो अपने शत्रु की इस विकल मृत्यु पर प्रसन्न हो रहे होंगे। आज वह हुआ जो तुम चाहते थे, और जो मैं नहीं चाहता था। मैंने अपने संपूर्ण जीवन का एक-एक पल महत्वाकांक्षा की टकराहट से बचने में लगाया। परंतु तुम्हारे सम्मुख मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए। यह देखो, अब अंधेरा बढ़ा जा रहा है। साँझ हो रही है, मेरे

जीवन की अंतिम साँझ। (पृष्ठभूमि में सारंगी पर करुण आलाप, जो चढ़ता है) और उधर वे मेघ गिरे आ रहे हैं, द्रौपदी के बिखरे केशों की भांति। वे मुझे निगल लेंगे युधिष्ठिर। जाओ, जाओ मुझे मरने दो। तुम अपनी महत्वाकांक्षा को फलते-फूलते देखो ! जाओ गुरुजनों और बन्धु-बान्धवों के रक्त से अभिषेक कर राजसिंहासन पर विराजो मैं तुम्हारे चरणों से रौंदे हुए कांटे की भांति तुम्हारे मार्ग से हट जाता हूँ।

युधिष्ठिर : इतने उत्तेजित न हो, सुयोधन की भांति धैर्य रखो।

दुर्योधन : घबराओ नहीं युधिष्ठिर। मेरी शांति के लिए तुम जो उपाय कर चुके हो, वह अचूक है। दो क्षण और। फिर मैं सदा को शांत हो जाऊँगा। पर अंतिम साँस निकलने से पहले युधिष्ठिर, एक बात कहे जाता हूँ। तुम पश्चात्ताप की बात पूछने आये ना? मेरे मन में कोई पश्चात्ताप नहीं है। मैंने कोई भूल नहीं की। मैंने भय से तुम्हारी शरण नहीं मांगी। अंत तक तुम से टक्कर ली और अब वीरगति को पाकर स्वर्ग को जाता हूँ। समझे युधिष्ठिर! और मुझे कोई ग्लानि नहीं, कोई पश्चात्ताप नहीं है। केवल एक केवल एक दुःख मेरे साथ जाएगा।

युधिष्ठिर : क्या..?

दुर्योधन : यही.....यही कि मेरे पिता अन्धे क्यों हुए ! नहीं तो, नहीं तो.....

(करुण आलाप उठकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है)।

~@~@~

3. कथा साहित्य में कामकाजी महिला का स्वरूप - (निबंध)

- डॉ. एम. विमला

लेखिका परिचय:

हिन्दी - कन्नड की सुप्रतिष्ठित लेखिका, अनुवादिका डा. विमला का जन्म 1955 को बेंगलूर में हुआ। एम.ए., पी-एच.डी के बाद बेंगलूर विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हो कर 2017 में अवकाश प्राप्त किया। अन्य विश्वविद्यालयों मे भी बतौर विजिटिंग प्रोफेसर काम किया है।अनेक विश्वविद्यालयों के आमंत्रण पर राष्ट्रीय स्तर पर व्याख्यान दिए हैं। इनके मार्गदर्शन में 54 शोधार्थियों को पी.एच.डी उपाधि तथा 28 विद्यार्थियों को एम.फिल उपाधि प्राप्त है। 100 से अधिक शोधालेख लिखे हैं।

उपलब्धियाँ : 9 कहानी-संकलन, विभिन्न पाठ्यक्रमों से संबंधित 7 पुस्तकों का संपादन। दूरदर्शन एवं आकाश्वाणी के विविध कार्यक्रमों में भाग लेती रही हैं। कई विश्वविद्यालयों के कौंसिल, कमिटीस की सदस्या रह चुकी हैं तथा अपनी सुदीर्घ साहित्य-साधना के लिए अनेक सम्मानों से विभूषित हैं।

~@~@~

लड़की, तरुणी, महिला, वृद्धा - इन शब्दों के साथ ही कुछ शब्द पर्यायवाची बनकर जुड़े हैं त्याग, क्षमा, सहनशीलता, ममता और अबला। न जाने क्यों हमारे समाज ने त्यागमयी नारी को, सहनशील स्त्री को, क्षमया धरित्री महिला को ऐसा श्राप दिया है कि वह हमेशा के लिए अबला बनकर ही रहे। यद्यपि वह पुरुष के हर कदम के साथ कदम बढ़ा रही है, कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है और ज़िम्मेदारी

को निभाने में उसका साथ दे रही है, फिर भी उसके साथ व्यवहार ऐसा किया जाता है जैसे मनीषियों ने बहुत पहले कहा था - 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति', 'स्त्री ताड़न योग्य'। जिंदगी के हर मोड़ पर उसे कठिनाइयों से गुज़रने पर विवश किया जाता है।

हमारे सम्मुख नारी के अनेक स्वरूप हैं - माँ, बेटी, बहन, बहू, सास आदि। यह सब होते हुए भी उसका एक और रूप उभर आता है - कामकाजी महिला का। 'The status of working women in India' में प्रमीला कपूर कहती हैं कि "सामाजिक दृष्टि से देखें तो भारत की स्वतंत्रता के बाद से होनेवाले सबसे अधिक सारभूत और उल्लेखनीय परिवर्तनों में से एक है नारी समाज की आपेक्षिक मुक्ति - घर की चारदीवारियों से निकल कर उसका बाहरी दुनिया में शामिल होना। स्वतंत्रता के बाद बदली हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोज़गार के अवसरों में काफ़ी वृद्धि हुई है। नई हालातों के फलस्वरूप इनके लिए समानता की अभिव्यक्ति और उसकी प्रतिष्ठा के नये मार्ग खुल गये हैं।"

नारी अब केवल रमणी या भार्या मात्र नहीं रही, वरन् घर के बाहर समाज का एक विशिष्ट अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक बनकर प्रस्तुत हुई है। राजेंद्र यादव, 'दुनिया समानांतर' में लिखते हैं कि, "पुराने संस्कारों और नयी परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरुष के अनेक टूटे संर्दभों के बीच अकेली होती जाती है, उसके मानसिक गठन और मनोविज्ञान में कैसे दिलचस्प परिवर्तन आते जाते हैं, इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म-संश्लिष्ट धरातलों और विधि संवेदनशील पक्षों से चित्रित करती

है।" बदली हुई परिस्थितियों तथा मनःस्थितियों में कामकाजी महिला की भूमिकाओं का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि नारी नौकरी करती हुई आर्थिक निर्भरता से संतृप्त होने की एक सीमा तक सफल हुई है, किंतु उसकी यह स्थिति विशेष संतोषजनक नहीं है। वह आज भी व्यर्थता बोध से भर जाती है। घर और बाहर के जीवन में समन्वय स्थापित न कर पाने के कारण उसे नौकरी छोड़नी पड़ती है या तनाव की स्थिति को झेलते हुए अनचाहा जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

इस प्रकार नारी का व्यक्तित्व संपूर्णतः छितरा कर रह जाता है और कहीं टूटन का अनुभव करती हुई बिखर जाती है। अपनी इस स्थिति को सँवारने अगर वह कोई कदम उठाती है तो स्वयं अपने परिवार में लांछित होती है और कुंठित जीवन बिताती है।

स्वातंत्र्य-पूर्व समाज में पुरुष नारी को नौकरी की स्वतंत्रता दे नहीं रहा था और नारी अधिक बंधनों में घुटती जा रही थी। स्वातंत्र्योत्तर काल में देश की भयावह समस्याओं के कारण स्त्रियों को मजबूरन नौकरी करना पड़ा। परिवर्तित अर्थव्यवस्था एवं एकल परिवार के कारण पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों को स्वीकारना पड़ा। संयुक्त परिवार के टूटने, छोटे परिवार, सीमित आय तथा अन्य आर्थिक मजबूरियों से वह संत्रस्त हो गयी। शिक्षित नारी को नौकरी की सुविधाएँ मिलने लगीं। कभी दहेज जुटाने के लिए नौकरी करना तो कभी माँ-बाप की बीमारी के कारण, कभी भाई-बहनों की पढ़ाई के कारण नौकरी करना आदि से वह मजबूर थी और है। कई बार जिन कारणों से वह नौकरी करती है, वे ही कारण समस्या का रूप धारण कर लेते हैं। वस्तुतः

कामकाजी महिलाओं की संख्या मध्य वर्ग में अधिक है। इस वर्ग की स्त्रियों को जिन परिस्थितियों से गुज़रना पड़ता है, वह क्या महसूस करती है, यही कहानी का कथ्य बन गया है।

कामकाजी महिला किसी की पत्नी है, विधवा है, परित्यक्ता है, बहन है। आज कामकाजी पत्नी नये मूल्यों को स्वाभाविक रूप से स्वीकार करती जा रही है। एक ओर कार्यालय में अनेक पुरुषों की नज़रों को झेलते हुए काम करना पड़ता है, तो दूसरी ओर पति की आँखों में मंडराने वाले संदेह का सामना करना पड़ता है। एक ओर आर्थिक शोषण तो बच्चों के साथ समय न बिता पाने की मजबूरी दूसरी ओर और अन्य गृहिणियों की तरह जीवन बिताने की स्वतंत्रता न होने का दुःख भी वह पालती है। अतः धीरे-धीरे वह संवेदन शून्य, यंत्रवत् जड़ होने लगती है। कामकाजी विधवा या परित्यक्ता की समस्या और उसकी मानसिकता विवाहित या अविवाहित स्त्रियों से भिन्न है। सबसे अतीव दयनीय परित्यक्ता होती है। उसके पास न भूतकाल की सुखद स्मृतियाँ होती हैं, न भविष्य की स्पष्टता।

पति द्वारा त्यक्त नारी अपमान की मानसिक वेदना में जलती है, दुबारा विवाह करके कोई ख़तरा भी मोलना नहीं चाहती। कई बार अपनी संतान भी पति की दुखद यादों की प्रतीक बन जाती है। विधवा या परित्यक्ता इन दोनों की ओर पुरुष कभी सहानुभूति से, कभी दया से या फिर शोषण की दृष्टि से देखता है। विधवा नारी की आर्थिक विवशता ध्यान देने योग्य है। कामकाजी महिलाओं में प्रौढ़ा अविवाहित स्त्री की मानसिकता अधिक उलझन पूर्ण है। एक ओर वह अनेक निजी समस्याओं से पीड़ित रहती है तो दूसरी ओर स्नेह व आत्मीयता के लिए तरस जाती है। ऐसी स्त्रियाँ आज भी परंपरा

और आधुनिकता के द्वंद्व में पिस रही हैं।

कामकाजी बहन अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं को मारकर, पारिवारिक समस्याओं में उलझ रही है। बदलते संदर्भों में बहन का रिश्ता औपचारिक बनता जा रहा है। भाई-बहन के संबंधों में ठंडापन आ गया है। विवाहपूर्व जीवन में वह व्यक्तिगत भावनात्मक अभावों से त्रस्त अथवा दमन से पीडित है। कई इच्छाओं को सहज स्वाभाविक रूप से स्वीकार न करने के कारण उसमें घुटन, अकेलापन व छटपटाहट घर कर जाते हैं।

आधुनिक शिक्षा एवं स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप नारी की जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। वह नौकरी के साथ-साथ घर की व्यवस्था को संभालती है और बच्चों के प्रति अपना कर्तव्य भली-भाँति निभाति है। वह आर्थिक दृष्टि से अपने पति की सहायता करती है और घर के सदस्यों से सहायता की आशा करती है। पर उसकी आशा मात्र आशा बनकर रह जाती है। जब घर के अन्य सदस्य काम करते हैं तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि वे इस कामकाजी महिला पर अहसान कर रहे हों।

कामकाजी विवाहित स्त्रियाँ कई कारणों से नौकरी छोड़ नहीं पातीं। जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए या आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए या पति के आय में मदद करने के लिए की गयी नौकरी भी शीघ्र ही उसके लिए अनिवार्य बन जाती है। यदि वह परेशान होकर नौकरी छोड़ना चाहती भी है तो पति या घर के लोग उसे यह निर्णय लेने नहीं देते। कुछ महिलाओं को आजीविका अर्जित करने के लिए नौकरी करनी पड़ती है। अगर पति बेरोज़गार, रोगी या वृद्ध हो तो उसे घर और बाहर जूझना पड़ता है, पति की देखबाल

करनी पड़ती है और पति का अविश्वास भी झेलना पड़ता है। इस दुहरे बोझ और नौकरी न छोड़ पाने की विवशता से उसके जीवन में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वह तय नहीं कर पाती कि घर चुने या काम, और न ही दोनों में से किसी एक से मुक्त होना चाहती है। ऐसी स्थिति में वह सदैव विस्थापित बनी रहती है। उसके जीवन का संतुलन बिगड़ जाता है।

समाज में व्याप्त कथनी और करनी का भेद, सह-कर्मियों में हमेशा दूरी बनाये रखना या उनसे मित्रता के कारण उड़नेवाली संदेहपूर्ण कहानियाँ, दुहरे नैतिक मानदण्ड आदि से उस वातावरण में वह अजनबी बनकर रह जाती है। अगर वह कोई उच्च पद पर नौकरी कर रही है तो उसे सम्मान तो मिलता है, लेकिन उस पद के अनुरूप जब वह व्यवहार करती है तो उसकी आलोचना की जाती है। यदि वह मिलनसार है तो उसे बदनाम किया जाता है। उसके पैसों पर पलनेवाले घर के सदस्य भी उसे कुलटा स्वीकार कर लेते हैं।

पुरानी संस्कारग्रस्त नारी बाहर नौकरी की सुविधाएँ प्राप्त करना चाहती है और घर की सुरक्षा भी। यह उसकी ऐसी मजबूरी है जिससे वह छुटकारा पा नहीं सकती । न ही वह यह तय कर पाती है कि उसे पुराने संस्कार मुक्त महिला होना है या पुरानी अबला नारी। ऐसी अवस्था में वह अपनी भीतरी दुर्बलता को स्वीकार नहीं करती, बल्कि परिस्थितियों को दोष देती है। इस कामकाजी महिला की विभिन्न परिस्थितियाँ, उसकी विवशता, उसकी मानसिकता आदि का चित्रण हिन्दी कहानी-साहित्य में विपुल मात्रा में मिलता है। उनमें से कुछ का विवरण उदाहरण स्वरूप निम्नांकित है।

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'विद्रोह' की नीना सर्विस करती है। शादी की उम्र पार करने के बावजूद माता-पिता को उसकी शादी की कोई चिंता नहीं। वे स्वयं अपने परिवार की जनसंख्या बढ़ा रहे हैं, पर बेटी के विषय में सोचन की ज़रूरत नहीं समझते। नीना के ऑफिस की उससे भी छोटी व कम सुंदर लड़कियों की शादी हो चुकी है और वे जवान बच्चों की माँ बन चुकी हैं। इससे नीना के मन में कुंठा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। कभी-कभी वह सोचती है कि वह माँ-बाप की गृहस्थी का भार ढो-ढोकर थक गयी है। क्यों न अपने ही ऑफिस के मिस्टर नायडू के साथ भागकर ब्याह रचा ले! औरों के खा़तिर क्यों अपनी भावनाओं का गला दबाये! ऊपर से रोज़ की खिच-खिच से वह तंग आ जाती है और एक दिन विद्रोह करने का विचार करती है। वह नौकरी से त्यागपत्र देने का निर्णय करती है, पर घर पहुँचकर जब अपने बूढ़े पिता का दीन-दुःखी चेहरा देखती है तो हाथ में रखे त्यागपत्र के पुर्ज़े -पुर्ज़े कर देती है।

निरुपमा सेवती की कहानी 'माँ यह नौकरी छोड़ दो' एक ऐसी माँ की कहानी है जो बेटे की पढ़ाई के लिए किसी अफसर के यहाँ रसोई की नौकरी करती है। उसकी इच्छा है कि बेटा पढ़-लिखकर अफसर बन जाय। पार्वती पति से पिटकर अलग रहने पर भी कोई शिकायत नहीं करती और पति के ख़िला़फ एक शब्द नहीं कहती। स्वयं बेटे को समझाती है कि 'कमरा ही तो है यह, तेरे बाबा का सीमेंट का कमरा था, यह ईंटों का है।' इस माँ की पीड़ा, छटपटाहट स्पष्ट दिखाई देती है। अफ़सर के रसोईघर पहुँचते ही वह अपने बेटे को बाहर खेलने के लिए भेज देती है। उस साहब के व्यवहार से

वह दुःखी है । साहब का गाउन पहने रसोईघर में काम करती माँ बेटे को अजनबी लगती है। साहब अविवाहित है, जिससे यह संकेत भी मिलता है कि उन दोनों में कुछ संबंध है क्योंकि वह पार्वती के साथ पत्नी जैसा व्यवहार करता है। बेटा अपनी माँ से नौकरी छोड़ने के लिए कहता है, पर वह विवश है। दूसरी जगह जाने से भी ऐसे ही साहब मिलेंगे।

कुसुम अंसल की कहानी 'इंतज़ार' में पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण का चित्रण है। स्त्री शोषण की साज़िश के चंगुल में फँसती जाती है और उसका परिणाम चुपचाप स्वीकार कर लेती है किंतु अंदर ही अंदर घुटती है और मुक्ति के लिए छटपटाती रह जाती है। इस कहानी की देविशा का पति विशाल चाहता है कि पत्नी सब कुछ देकर आफिस में तरक्की करे। वह पत्नी से कहता भी है कि, "मनुज गोस्वामी से अच्छी खासी दोस्ती है तुम्हारी, तुम समझती तो हो अभी तक तुम्हारी तरक्की क्यों नहीं हुई, कुछ तो करना ही होगा।" लेकिन देविशा का मन बॉस मनुज को स्वीकार नहीं करता।

भारतीय नारी अपनी प्राचीन संस्कारों से मुक्त होकर अपराध बोध में अपने आप को दफ़नाना नहीं चाहती। कृष्णा अग्निहोत्री की 'आक्टोपस' कहानी की माँ जब अपने शराबी पति से अलग होती है तो उसकी समस्याएँ बढ़ जाती हैं क्योंकि माँ को कभी राजेश अंकल के पास तो कभी भटनागर अंकल के पास जाना पड़ता है जो उसके बॉस अग्रवाल बर्दाश्त नहीं करते और उस पर दोष लगाकर उसे नौकरी से निकाल देते हैं। पहले पति नशे में धुत जलती हुई सिगरेट से उसके जिस्म पर दाग देता था और अब इस असहनीय स्थिति से गुज़रना पड़ता है। तलाकशुदा नारी नौकरी कर अपनी संतान की

देखभाल कर सकती है पर वह धीरे-धीरे इस क्रूर समाज के बंधन में फँस जाती है। तलाकशुदा स्त्री को लोग नरम चारा समझते हैं। केवल हवस की हद तक लोग संबंध रखना चाहते हैं। पति से दूर तो हो गयी है। अब बेटी की शादी के लिए न जाने उसे कितने अंकलों के पास जाना पड़े!

ममता कालिया की कहानी 'जिंदगी सात घंटे बाद की' में कामकाजी महिला की जिंदगी की दुःस्थिति का वर्णन है। महानगरों में लड़कियाँ शिक्षा समाप्त करके नौकरी प्राप्त करना चाहती हैं और पा भी लेती हैं। नौकरी को अधिक महत्व देकर बाद की उम्र के अकेलेपन की चिंता नहीं करतीं। शीघ्र ही युवावस्था की इच्छाएँ मरने लगती हैं।

कामकाजी नारी की समस्याएँ, मानसिक परिवर्तन, मूल्यगत संक्रमण आदि तथ्यों पर विचार करने हेतु कथ्य के आधार पर कहानियों के मूल्यांकन से पता चलता है कि शिक्षा ने नारी को अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता दी है। चूल्हा, चौका और चक्की से हटकर वह पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने लगी है जिससे माँ, बहन, बेटी, पत्नी के अलावा इन संबंधों से अलग उसका नारीत्व उभरकर आया है। आज शिक्षित माँ सार्वजनिक काम अथवा नौकरी में व्यस्त हो रही है। आज स्थिति इतनी परिवर्तित हो चुकी है कि किसी समय अबला कहलाने वाली नारी में अब दूसरों का बोझ उठाने का सामर्थ्य आ गया है। विवाह अब एक धार्मिक या सामाजिक कर्म न होकर स्त्री-पुरुष की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सर्वमान्य साधन है।

फिर भी, यह निश्चित है कि कामकाजी नारी को विवाह पूर्व अपने से पहले परिवार को डालना पड़ता है और विवाह

के बाद पति के परिवार को । जीवन से निरंतर जूझना ही उसकी नियति है। आधुनिक युग ने स्त्री-पुरुष दोनों को अपने-अपने व्यक्तित्व के प्रति अधिक जागृत कर दिया है। इस नयी स्थिति में कोई भी अपने अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहता। नारी-पुरुष की समानता, समान अधिकार का मूल्य भी इसी युग की देन है। सामाजिक व धार्मिक मूल्यों के साथ-साथ नैतिक मूल्यों में भी अंतर आया है। वस्तुतः परिवेश तथा परिस्थितियों के अनुसार मानव-मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाता है। समकालीन हिन्दी कहानी में प्रमुख रूप से परंपरागत जीवन-मूल्यों के विघटन का स्वर सुनाई देता है। यहाँ महिलाओं की अनेक समस्याओं, विभिन्न भावनाओं, स्वतंत्र विचारों, उपेक्षित संवेदनाओं को ध्वनित किया गया है। इसके साथ ही, हमें याद रखना है 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' और कभी न भूलें - 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवताः ।'।

~@~@~

4. अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह -"कालापानी"-
(यात्रा वृतांत)

- बबन फाले

लेखक परिचय :

जन्म और निधनः अंडमान। शिक्षाः एम.ए (इतिहास) बी.एड उपलब्धियाँः अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के शिक्षा विभाग में पीजीटी/ए.ई.ओ., वाइस प्रिंसिपल और प्रिंसिपल के रूप में 29 साल की सेवा। पोर्ट ब्लेयर के सचिव और अध्यक्ष के रूप में 25 वर्षों की स्वैच्छिक सेवा, उसी संस्था की रीढ़। दूरदर्शन पर दिखाई गई स्वतंत्रता सेनानियों की जानकारीपूर्ण प्रदर्शनी "एक मुलाक़ात" दूरदर्शन और आकाशवाणी पोर्ट ब्लेयर पर प्रसारित कार्यक्रम।

~@~@~

यह अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह हिमालय पर्वत की श्रृंखला का हिस्सा है, जो उत्तरी पूर्व से दक्षिणी पूर्व बंगाल की खाड़ी में चंद्रमा की कोर की तरह यह टापू अराकन योमा पर्वत माला के रूप में जाने जाते हैं जो बर्मा से सुमात्रा (इंडोनेशिया) तक फैले हैं। प्राकृतिक ईश्वरीय अनुकंपा से यह टापू एक करिश्मा की तरह हर मनुष्य प्राणी के मन को अपने बेमिसाल सुंदरता से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन टापुओं की समुद्री गोद में उभरी सुंदरता इतनी विशाल स्वरूप ली हुई है कि, उसे देखते देखते आँखे नहीं थकती। समुद्र की विशालता और उसके किनारे रेतीले बीच सैलानियों को अधिक आकर्षित करते हैं। कई बीच स्वच्छ सफेद बालू और इंद्रधनुष रंगोंवाले प्राकृतिक स्वच्छ पर्यावरण से बेमिसाल है।

आप अपना समय इन द्वीपों में अपने मित्र, परिवार सदस्यों के साथ सभी बाधाओं से दूर जैसे कोलाहल और भीड़ से अलग प्राकृतिक सुंदरता का आनंद आप यहाँ ले सकते हैं। यह सारे छोटे-बड़े 572 द्वीप उत्तर पूर्व दिशा से दक्षिणी पूर्व बंगाल की खाड़ी में 8249 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैले हैं। उत्तर पूर्व से दक्षिणी पूर्व इन द्वीपों की लंबाई 780 किलोमीटर है। यह सारे द्वीप तीन जिलों में बटें हैं १) साउथ अण्डमान २) निकोबार ३) नॉर्थ और मिडिल अण्डमान। साउथ अण्डमान जिला में दक्षिणी अण्डमान और लिटिल अण्डमान का समावेश है। उत्तर और मध्य अण्डमान जिला में दीगलीपुर, मायाबंदर, रंगत, कदमतला और बाराटांग द्वीप का क्षेत्र आता हैं। निकोबार जिला में कारनिकोबार, नानकौरी तथा ग्रेट निकोबार का समावेश हैं। अण्डमान जिल्हा द्वीप क्षेत्र समुद्र खाड़ी और छोटे-छोटे क्रीक्स से अलग-अलग निर्मित है। निकोबार जिल्हा द्वीप क्षेत्र खुले समुद्र क्षेत्र में फैला है। नार्थ और मिडिल अण्डमान क्षेत्र आस्टिन क्रिक पर बने चेंगप्पा पुल से जुड़ा है।

पोर्टब्लेयर, अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह की राजधानी हैं। जो भारत के मुख्य भूमि से 1200 किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं। ग्रेट निकोबार से सुमात्रा केवल 137 किलोमीटर है। जब की, उत्तरीय अण्डमान से बर्मा, थाईलैंड और बांग्लादेश भी पास है। यह सभी द्वीप हजारों सालों से सुरक्षित वन संपदा से भरपूर है। अपने आप में प्राकृतिक हरियाली और पेड़-पौधों से पूर्ण हैं। मँग्रो वनसंपदा से क्रीक्स पर मखमली चादर का नजारा देखने को मिलता हैं। इन द्वीपों की अधिकतर भूमि ऊंची-नीची हैं, 85 प्रतिशत से

अधिक वनक्षेत्र हैं। मूल्यवान लकड़ी का यह भंडार हैं। इन द्वीपों की जलवायु विभिन्न प्रकार की हैं। मई से अक्टूबर तक भारी वर्षा होती हैं। 3180 मि.मि. वर्षा हर साल होती हैं। आज इन द्वीपों के पेड़- पौधों, वनों में ऐसी सैकड़ों मूल्यवान वनस्पतियाँ हैं, जो आयुर्वेदिक दवा के लिए उपयुक्त हैं। आयुर्वेद दवा के लिए अनुसंधान चल रहा हैं। पाषाण युगीन मानव जनजातियाँ यहाँ के वन में आज भी रहती हैं। यह ज्ञात होता हैं कि, पोर्तुगीज, चीनी और अरब जहाजी व्यापारियों ने अफ्रीकन दासों को अपने जहाज दुर्घटनाग्रस्त होने पर यहाँ उन्हें छोड़ दिया था।

अण्डमान तथा निकोबार द्वीप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि माले देश से जुड़ी हुई हैं। यहाँ से दास (गुलाम) का व्यापार होता था। माले की भाषा में इन द्वीपों का नाम हंडूमान से चलकर हंदूमान और आगे चलकर अण्डमान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका उल्लेख रामायण में मिलता हैं। रोमन, भौगोलिक ज्ञाता टॉल्मी ने प्रथम बार अपने संसार के मानचित्र में दूसरी शताब्दी में इन टापुओं को अंकित किया। प्रसिध्द चीनी यात्री ईत्सिंग ने इन द्वीपों की परशियन जहाज से 672 ईसवी में यात्रा की, उसने इन द्वीपों की आदिम जनजातियों को देखकर नरभक्षी के रूप में पहचाना। सन् 870 इसवी में कुछ अरब यात्रियों ने भी इसी प्रकार का मत दिया। सन् 1260 इसवी में प्रसिध्द नाविक मार्को पोलो ने इन द्वीपों का भ्रमण किया और यहाँ के लोगों को नरभक्षी के रूप में देखा। फ्रेयर ऑड्रिरिक जिसने सन् 1322 में इन द्वीपों की यात्रा की आपने अण्डमान वासियों को कुत्ते के समान उनका चेहरा होने के साथ ही नरभक्षी के रुप में महसूस किया। 15 वीं शताब्दी में

निकोल्ट्रा कोंटी ने अण्डमान द्वीपों की यात्रा की। सन् 1050 इसवी के तंजोर के शिलालेख से इन द्वीपों के लिये नक्कावरम के रूप में जाना। इसका मतलब हैं नग्न लोगों का देश।

यहाँ के द्वीपों के बारे में बहुत सारी कंपनियों ने दिलचस्पी ली। भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कॉर्नवालिस ने आदेश दिया कि इन द्वीपों का सर्वे किया जाए। यह काम लेफ्टिनेंट आर्चिबॉल्ड ब्लेयर और लेफ्टिनेंट आर. एच. कोलब्रुक ने इन द्वीपों का सर्वे सन् 1789 इ. से शुरू किया। आगे चलकर ब्लेयर सर्वे 38 पार्टी को लेकर आता रहा और उसने अण्डमान में पहली बस्ती कैदियों की चाथम द्वीप पर 1789 इसवी में बसाने की सिफारिस की। ब्लेयर के इन प्रयासों को मद्देनजर रखते हुए, इन द्वीपों के राजधानी का नाम पोर्टब्लेयर घोषित कर दिया ।

आर्चिबाल्ड ब्लेयर अपने सर्वे के दौरान बैरन द्वीप को ज्वालामुखी के रूप में देखा यह द्वीप समय-समय पर अपने स्वरूप में जागृत होता रहता हैं। नारकोंडम इसी प्रकार एक ज्वालामुखी द्वीप हैं, पर यह द्वीप जागृत अवस्था में देखने में नहीं आता । मैंग्रो वनों से यह द्वीप परिपूर्ण हैं। मिडिल स्ट्रेट के पास चूनापत्थर की गुफा ब्लेयर नेखोज निकाली थी। 1793 इ. में सर्वप्रथम यहाँ के चाथम द्वीप पर कैदी बस्ती बसाने का श्रेय आर्चिबॉल्ड ब्लेयर को जाता हैं। अण्डमान को "कालापानी" के नाम से भारत की या सारे संसार की आम जनता अंग्रेज लेखक और भारतीय लेखकों के किताबों को पढ़कर जानती हैं। साथ ही साम्राज्यवादी इंग्लैंड का इतिहास सबको विदित हैं। लेकिन आज यह "कालापानी" संसार भर के पर्यटकों के लिए प्राकृतिक सुन्दरता का आकर्षण बना हुआ है।

अण्डमान के आदिवासियों पर फिल्माया गया लघुचित्र 'मैन इन सर्च ऑफ मैन' को भारत सरकार से ‘सर्वश्रेष्ठ वृत्तचित्र पुरस्कार’ (Best Documentry Award) मिला है। इस लघुचित्र के सह निदेशक श्री प्रेम वैद्यजी ने अण्डमान को "आदिम जन-जातियों को अपनी आधुनिक सभ्यता के विकास की प्रयोगशाला कहा हैं।" क्रांतिकारी बाबा पृथ्वीसिंह आजाद ने भी अण्डमान को "शहीदों एवं क्रांतीवीरों का तीर्थस्थान" बतलाया हैं। प्रेम वैद्यजी के साथ जर्मनी के फिल्म निर्माता भी इस द्वीपों के दौरे पर आए थे ।

ये द्वीप आम जनता में "कालापानी" के नाम से जाने जाते हैं। इसके पीछे दो तथ्य सामने आते हैं। पहला यह कि अण्डमान समुद्र के नीले गहरे पानी से इसका नाम कालापानी पड़ा हैं। दूसरा यह कि अंग्रेजों द्वारा जिन क़ैदियों और क्रान्तिकारियों को सजा सुनाई जाती थी, सजा के रूप में इसे कालापानी से सम्बोधित किया जाने लगा और इस रूप में आम प्रचलित "कालापानी" नाम पड़ा, जहाँ से वापस जाना मुश्किल हो ।

अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेज सरकार ने 14 अप्रैल, 1788 इ. को लेफ्टनेंट आर्चिबाल्ड ब्लेयर को यहाँ उपनिवेशक स्थापित करने के लिए और इसके बाद यहाँ कैदियों और स्वातंत्र्य सेनानियों को इस निराली दुनिया में लाया गया। जिसे हम आप कालापानी के नाम से जानते हैं। 25 अक्टूबर, 1789 को सबसे पहले कैदियों का दल इन द्वीपों के लिए लाया गया। सन् 1789 इ. में कैदियों की संख्या 820 के लगभग पहुँच गई। इन कैदियों को उन दिनों वाइपर द्वीप पर खुला छोड़ दिया जाता था। क्योंकि चारों ओर समुद्र और घने जंगल में खुंखार

आदिवासी होने के कारण इनका भाग जाने का कोई खतरा नहीं था।

22 जनवरी, 1858 इ. को अण्डमान द्वीप समूह के इतिहास में इंग्लैंड का, राष्ट्रीय यूनियन जैक फहराया गया। भारतीयों ने अंग्रेज शासन के खिलाफ 10 मई, 1857 को विद्रोह किया। इस विद्रोह के 200 सिपाहियों को कालापानी याने अण्डमान जलवाष्प अंग्रेजी फ्रिग्रेट "एस.एस. सेमीरामी" से 10 मार्च सन् 1858 को इन 200 सिपाहियों को पिनल सेटलमेंट के तहत यहाँ लाया गया था। अंग्रेज सरकार ने 20, नवम्बर सन 1857 ईसवी को अण्डमान कमेटी का निर्माण किया, जिसमें डॉ. फ्रेडरिक जॉन मोट सर्जन बंगाल आर्मी के अध्यक्षता में समिति ने कार्य करना शुरू किया। अंग्रेज शासन ने संकेत दिया कि, कमेटी खाड़ी द्वीपों के तटों का बारीकी से निरीक्षण करें और अच्छी जगहों को चुने, जहाँ आगे चलकर इन सेटलमेंट की नींव डाली जा सके। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट 1, जनवरी 1858 इसवी को आदरणीय गवर्नर जनरल के सामने रखी और 15 दिन के पश्चात यह निर्णय लिया गया कि अण्डमान में पिनल सेटलमेंट शुरू किया जाय।

कैप्टन हेनरी मान को आदेश दिया कि वहाँ ब्रिटिश ध्वज यूनियन जैक लेकर अण्डमान द्वीप समूहों को अपने अधीन कर ले। इसके अलावा अण्डमान के साथ जुड़े सभी द्वीप साम्राज्ञी रानी विक्टोरिया और ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ जोड़ दिए जाएँ। कैप्टन मान ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए, अण्डमान द्वीप में 22 जनवरी सन् 1858 ईसवी को यूनियन जैक पताका को फहराया और इसी के साथ यहाँ अंग्रेज शासन शुरू हो गया। इस पिनल सेटलमेंट की याद में,

यहाँ हर साल उन आजादी के दिवाने सैनिकों की स्मृति में कार्यक्रम का आयोजन होता हैं। पिनल सेटलमेंट के तहत आए 1857 के सैनिक, पंजाब के गदर और वहाबी विद्रोही, मनीपुर के विद्रोही और अन्य प्रांतो से लाए गए। भारतीय देश भक्तों ने अपने परिश्रम से जंगल साफ करके, रॉसद्वीप को अंग्रेज शासन की राजधानी का रूप दिया। उस समय इन लाए गए देश भक्तों को कालापानी सजा के रूप में अण्डमान में भयंकर कष्टपूर्ण दर्दनाक सजा काटनी पड़ती थी।

अण्डमान से मुख्य भूमि भारत लौटना उस समय बहुत मुश्किल था। इसलिये कालापानी के नाम से अण्डमान आज जनता में प्रचलित हैं।भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात अंग्रेज सरकार ने क्रांतिकारियों को कालापानी याने अण्डमान भेजने का निर्णय लिया। जिससे अंग्रेज सरकार को इन खतरनाक क्रांतिकारियों से सदा-सदा के लिए मुक्ती मिल सके। कुछ हद तक वे अपने नापाक इरादे में सफल भी हुए। सन् 1857 ई. के विद्रोही सिपाही कालापानी पर सन् 10 मार्च 1858 ई. मे. यहाँ पहला जत्था 200 सिपाहियों और उसके पश्चात लगातार सैकड़ों भारतीय अंग्रेज सरकार विरोधी क्रांतिकारियों को यहाँ लाया गया पर इन सैकड़ो वीर सेनानियों का आज तक कोई अतापता नहीं हैं। वे सैकड़ों क्रांतिकारी अपने देश की आजादी के लिए इस कालापानी धरती में सदा-सदा के लिए समा गए। जिनके लिए हम आज केवल श्रद्धांजलि ही अर्पण कर सकते हैं। जिनके बलिदानों से हम आज़ादी के वातावरण का आनन्द ले रहे हैं। साथ ही खुली हवा का आनंद उठा रहें है।

~@~@~

5. आनन्द के क्षण – (ललित निबंध)

- कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

लेखक परिचयः- (1906 - 1995)

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी के यशस्वी गद्य-लेखक, पत्रकार और शैलीकार हैं। इनका जन्म सन् 1906 ई. में उत्तरप्रदेश के सहारनपुर जिले के देवगढ़ ग्राम में हुआ था। सहारनपुर के संस्कृत विद्यालय में कुछ समय तक अध्यापन का कार्य करने के पश्चात् इन्होंने 'विकास', 'ज्ञानोदय', 'नया जीवन' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कार्य शुरु किया । इनकी साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में मेरठ विश्वविद्यालय ने इन्हें डी.लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया है।

ललित निबन्धों के अलावा रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज तथा लघु कथा के क्षेत्रों में भी प्रभाकर जी का सराहनीय योगदान रहा है। जिन्दगी मुस्कुरायी, माटी हो गई सोना, बाजे पायलिया के घुंघुरु, नई पीढी, नए विचार, बूँद बूँद सागर लहरा, महके आँगन चहके द्वार (ललित निबन्ध), क्षण बोले : कण मुस्काए (रिपोर्ताज) दीप जले : शंख बजे (संस्मरण), भूले हुए चेहरे (रेखाचित्र) आदि कन्हैयालाल मिश्र की प्रमुख रचनाएँ हैं ।

~@~@~

एशिया के एक प्रसिद्ध जीवन-शास्त्री का कहना है कि जिन्दगी संघर्ष से भरी हुई है। एक के बाद एक खींचतान लगी ही रहती है और चैन नहीं मिल पाता, इसलिए जीवन में उन क्षणों की बहुत क़ीमत है, जो जीवन को गुदगुदा दें और खींचतान की तेज़ी को भुला दें ।इस जीवन-शास्त्री ने लोगों को एक बड़ा दिलचस्प मशवरा दिया है कि जब तुम अपने किसी

मित्र-दोस्त से बात करने बैठो, तो घड़ी का मुँह दीवार की तरफ कर दो ।जब उनसे पूछा गया कि बातचीत का और घड़ी का क्या संबंध, तो उत्तर मिला कि वह कंबख्त याद दिलाती रहती है कि इतनी देर हो गई इतनी देर हो गई और इस तरह आनंद का वह क्षण खंडित हो जाता है, जो मित्र की बातचीत से मिलता है।

इसी विद्वान के जीवन का एक संस्मरण बहुत मजेदार है। उनके देश के राष्ट्रपति ने अपने देश में शिक्षा के प्रचार पर विचार करने के लिए एक विदेशी विद्वान को बुलाया। निश्चय हुआ कि राष्ट्रपति जी चार बजे शाम को उनसे बातें करें और उस बातचीत में ये महाशय भी उपस्थित रहें जो घड़ी का मुँह दीवाल की तरफ करने का मशहुवरा देते हैं। इसकी सूचना इन्हें दी गई और इनसे चार बजे आने की स्वीकृति ले ली गई। ठीक चार बजे वे विदेशी विद्वान राष्ट्रपति भवन पहुँच गए और राष्ट्रपति तो यहीं थे ही, पर ये तीसरे महाशय कहाँ है? सवा चार बज गए और चाय आ गई पर वे नहीं आए। लो ये बज गए साढ़े चार और तब भी वे ला पता। राष्ट्रपति का सेक्रेटरी उनके घर गया तो पता चला कि वे तो तीन बजे ही राष्ट्रपति भवन चले गए थे ।

सेक्रेटरी जब उनके घर से लौट रहा था, तो वे बाजार में उसे मिले। ये बाजार में क्या कर रहे थे। राष्ट्रपति भवन में एक विदेशी विद्वान से सलाह करने के मुकाबले यह कौन सा जरूरी काम था, जिसे वे बाजार में कर रहे थे।

"जी? क्या देख रहे थे वहाँ बाज़ार में?"

"जी कुछ नहीं और किया भी कुछ नहीं।“

न भौचक होने की जरूरत है न विस्मय-विमुग्ध। बात एकदम साफ है कि वे बाज़ार में कबूतरबाजी का मैच देख रहे थे। आपका जी चाहे तो आप नाक-भौ सिकोड़ सकते हैं। उनके नाम पर कुड़ सकते हैं। राष्ट्रपति ने भी कबूतर देखने की बात सुन कर यही किया था, पर एक बात पहले ही बता दूँ आपको कि तब आपका भी वही हाल होगा, जो उनका उत्तर सुनकर राष्ट्रपति का हुआ था। तो सुन लीजिए यह उत्तर राष्ट्रपति ने अपने देश की भाषा में जब उनसे कहा कि “क्या कबूतरों का मैच देखना इस राष्ट्रीय काम से ज्यादा जरूरी था' तो वे बोले, 'यह जरूरी और बेज़रूरी का या बढ़िया-घटिया का सवाल नहीं है, यह तो आनंद का प्रश्न है। यह काम बहुत जरूरी है, मैं यह बात मानता हूँ, पर अचानक जीवन में आनंद का गुद-गुदानेवाली जो क्षण आ गयी थी, मैं भला उसकी उपेक्षा कैसे कर सकता था राष्ट्रपति महोदय?" यह सुनकर राष्ट्रपति को हँसी आ गई। आप भी अब हँस सकते हैं, पर इस विद्वान की बात से इनकार नहीं कर सकते कि संघर्षों और खींचातानियों से भरी घडियों में जीवन को गुद-गुदानेवाले क्षणों का बहुत महत्व है और हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की चप्पल की कील उखड़ी हुई थी। समय की बात, उस पर उनका ध्यान नहीं गया और वे उसे ही पहने हुए एक सभा में भाषण देने चले गए। कील पैर में चुभती रही और खून रिसता रहा, पर उनके भाषण का प्रवाह बहता रहा। वे भाषण देकर मंच से उतरे, तो लोगों ने देखा कि चप्पल में काफी खून लगा है। किसी ने कहा, 'जब कष्ट हो रहा था, तो आप रुके क्यों नहीं?" गुरुदेव ने उत्तर दिया,

"सब बंधु भाषण सुनकर आनंद ले रहे थे और मैं सबको आनंद परसने का आनंद दे रहा था। ऐसे क्षण में दुःख की ओर ध्यान देता, तो यह क्षण खंडित हो जाता।' यही बात कि जीवन को गुदगुदाने वाले कुछ क्षण भी जीवन में महत्वपूर्ण हैं ।

इन क्षणों का कोई समय नहीं होता और इन क्षणों को जन्म देने का कोई निश्चित तरीका-प्रकार भी नहीं है। समालोचक प्रवर आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल बहुत गंभीर विद्वान थे और कवि सम्मेलनों में अपनी कविता बाँचने के स्वर में पढ़ा करते थे, उसे गाते न थे, पर उनके एक मित्र अपनी कविता खूब गाकर पढ़ा करते थे ।

एक कवि सम्मेलन में दोनों साथ गए। जब शुक्ल जी अपनी कविता आरंभ करने लगे, तो उनके मित्र जोर से बोले, "अब आप असुर की कविता सुनिए। असुर का अर्थ बिना सुर की भी और असुर का अर्थ राक्षस भी। बढ़ी सीधी चोट थी, पर बड़ी सधी हुई चोट थी। शुक्ल जी उस चोट को सह गए, तरह दे गए, पर जब वे मित्र कविता पढ़ने खड़े हुए तो शुक्ल जी ने खूब जोरदार स्वर में कहा, "आप लोग असुर की कविता तो सुन ही चुके, अब ससुर की कविता सुनिए।"

असुर की तरह ससुर के भी दो अर्थ हैं। पहला सुरसहित और दूसरा श्वसुर ससुरा, जो एक संबंध भी पर, एक गाली भी। सारी सभा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी और उसी क्षण ने सभी के जीवन को गुदगुदा दिया। इस आनंदमय क्षण को जन्म देने का काम बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से प्रयोग किए एक शब्द ने ही तो किया, पर यह कोई नियम नहीं है कि बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों के प्रयोग से ही ऐसे क्षण का जन्म हो। अनेक बार बुद्धिहीन शब्दों से भी गुदगुदाने वाले क्षण का जन्म होते देखा गया है।

प्रसिद्ध अभिनेत्री ग्रेस केली जनवरी में माँ बनने वाली हैं। पत्रों में यह समाचार छपा। एक परिवार में वह समाचार पढ़ा गया और उस पर चर्चा हुई, तो दस वर्ष की एक लड़की ने अपनी माँ से पूछा, "माँ, ग्रेस केली को यह कैसे पता चला कि जनवरी में उनका बच्चा होने वाला है ?" माँ चिन्ता में पड़ गई कि बच्ची को क्या जवाब दे, पर तभी उसकी छोटी लड़की जिसकी उम्र पाँच-छः साल की थी, चटाल से बोली "वाह, सब पत्रों में यह समाचार छपा है, तो क्या केली को पढ़ना नहीं आता।" कितने अबोध बोल थे, पर इन्होंने एक ऐसे क्षण को जन्म दिया, जिसने बहुत दिनों तक उस परिवार के जीवन को गुदगुदाया और आज भी हमारे मन को गुदगुदा देता है।

व्यंग्य बुरी चीज़ है, इसीलिए उसे मुहावरे में व्यंग्य-बाण कहा गया है, पर वह भी हमारे जीवन को गुदगुदा देता है- बिल्कुल उसी तरह, जैसे चतुर वैद्य विष से भी चिकित्सा का काम ले लेता है। विश्वविख्यात लेखक एच.जी.वेल्स की पुस्तक 'शेप ऑफ थिंग्स टु कम' पढ़कर एक घमंडी अभिनेत्री ने उन्हें पत्र लिखा, "पुस्तक मुझे बहुत पसंद आई, पर जनाब, यह तो बताइए कि यह आपने किससे लिखवाई थी ?"

इसे पढ़कर वेल्स नाराज़ हो सकते थे और उस चिट्ठी को फाड़कर फेंक सकते थे, पर नहीं, उन्होंने इसका उत्तर दिया और उसमें लिखा, "आपको यह पुस्तक पसंद आई, धन्यवाद, पर यह बताइए कि यह पुस्तक आपको किसने पढ़कर सुनाई थी ?" मतलब यह कि आपकी राय में मैं लेखक नहीं हूँ, पर मेरी राय में तो आप अनपढ़ भी हैं - इस लायक भी नहीं कि कोई पुस्तक बाँच सकें । ज़रा-सी सहिष्णुता और सरसता ने नाराज़गी के क्षण को अपने लिए, उनके लिए और

सबके लिए जीवन को गुदगुदाने वाला क्षण बना दिया और घमंडी का सिर भी झुका दिया ।

महान लेखक श्री पद्मसिंह शर्मा और महान् कवि श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' साथ-साथ जा रहे थे । शर्मा जी पतले-छरहरे, तेज-तर्रार और 'रत्नाकर' जी मोटे, भारी भरकम और रईस-मिजाज़। तो शर्मा जी की चाल यो कि झपटते-से और 'रत्नाकर' जी की चाल यों कि हिलते-से दिखाई दें। ऊबकर शर्मा जी ने कहा, "रत्नाकर जी, आप भी क्या जनवासे जैसी चाल चलते हैं।"

उचित है कि 'रत्नाकर' जी यह सुनकर अपने मुटापे पर झेंप जाएँ और यह क्षण उदासी का क्षण बन जाए, पर 'रत्नाकर' जी झेंपे नहीं, बोले, "मैं कोई डाक हरकारा तो हूँ नहीं कि जब चलूँ, भागता हुआ चलूँ।" इस उत्तर ने उस उदासी और झेंप के क्षण को गुदगुदानेवाला क्षण बना दिया और दोनों ही महीन बालकों की तरह खिलखिलाकर हंस पड़े ।

गांधीजी को उनके सब कार्यकर्ता बापू कहते थे, और उनके साथ बाप-जैसा ही बेतकल्लुफ व्यवहार करते थे। बातों-बातों में एक दिन एक कार्यकर्ता को मज़ाक सूझी तो उसने कहा, "बापू, आप गौओं की सेवा के लिए बहुत-से काम करते हैं और एक संस्था चलाते हैं, पर एक प्राणी गाय से भी अधिक निरीह है, लोग उसपर मनमाना अत्याचार करते हैं, उसे खाना भी ठीक से नहीं देते। वह है गधा। क्या आप उस बेचारे के लिए कुछ न करेंगे ?"

बापू बोले, "तुम्हारी बात ठीक है। मैंने गौओं की सेवा के लिए गौ-सेवक संघ की स्थापना की है। गधा-सेवक संघ की स्थापना कर उसके महामंत्री बन जाओ। तो बहुत अच्छा हो।“

गांधीजी के प्रस्ताव पर सब लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े और गधे की बात ने सबके जीवन को क्षण भर के लिए आनंद से गुदगुदा दिया। जी हाँ, गधे की बात ने ! अच्छा, गधा-सेवक संघ का मंत्री बनना तो फिर भी एक सार्वजनिक पद पाना है, पर किसी को गधा कहना और वह भी भरी सभा में कैसा है? जी, आपकी भी यही राय है कि यह घोर अपमान है, पर एक बार इस घोर अपमान में भी या जीवन को गुदगुदानेवाले क्षण का जन्म हुआ था।

इंग्लैंड के प्रधान मंत्री मिस्टर लायड जार्ज एक सभा में अपने मंत्रिमंडल के कार्यों की तारीफ कर रहे थे। यह पहले महायुद्ध काल की बात है। उनके विरोधी एक श्रोता ने। सभा में खड़े होकर पूछा, 'मिस्टर लायड जार्ज, आप तो शायद वही हैं, जिनके पिता गधे की गाड़ी चलाया करते थे?हँसना अंग्रेज़ों का स्वभाव है, तो लोग हँस पड़े, पर तमी लायड जार्ज ने कहा, "दोस्तो, यह सवाल सही है। मेरे पिता वाकई गधे की गाड़ी चलाया करते होंगे, पर वह गाड़ी तो बिक गई है। हाँ, यह गधा अभी तक मौजूद है।"

ओह, कुछ न पूछिए कि लोग किस तरह हँसे, किस तरह हँसे कि लायड जार्ज के बार-बार कहने पर भी हँसी के फव्वारे बंद न हुए और जलसा का जलसा, लोट-पोट हो गया। अच्छा, हँसी और गुदगुदी आवाजें तो आप काफी सुन चुके, अब एक ऐसी बात सुनिए कि जिसमें न शब्दों की आवाज़ है, न हँसी की, फिर भी वह जीवन को गुदगुदाने वाले क्षणों का सर्वोतम प्रतीक है। इटली के प्रसिद्ध देशभक्त मज़िनी उन दिनों निर्वासित थे। एक दिन वे अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक कार्लेल से मिलने गए।

कार्लेल ने बहुत आदर से उनका अभिनन्दन और स्वागत किया। इसके बाद वे अलाव के पास बैठ गए और चुपचाप कई घंटे तक बैठे रहे, कोई कुछ नहीं बोला। जब मज़िनी चलने के लिए उठे तो कार्लेल ने कहा, "आज की शानदार मुलाकात से बहुत आनंद मिला और इन क्षणों की याद बहुत दिनों तक जीवन को गुदगुदाती रहेगी क्या आपको भी जीवन को गुद-गुदानेवाले ऐसे क्षणों का अनुभव हुआ है? और क्या ऐसे क्षण को जन्म देने की कला आप जानते हैं? नहीं तो अभ्यास कीजिए, क्योंकि घरेलू और सार्वजनिक जीवन को समृद्ध बनाए रखने के लिए वह अत्यन्त आवश्यक है।

~@~@~

6. सर सैयद अहमद ख़ान - (जीवनी)

डॉ - शैलेश ज़ैदी

लेखक परिचय :

जन्म : 16 अगस्त 1943, मिर्ज़ापुर जनपद के एक गांव में। शिक्षा: एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट.। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं।

प्रमुख रचनाएं: हिन्दी शायरी का एक तारीखी़ जायज़ा (उर्दू में), चांद के पत्थर (कविता संग्रह), डेस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ परशिअन मैनस्क्रिप्ट्स आफ मौलाना आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़ ऑन हिन्दू रेलीजन (अंग्रेजी में), सूरदास के रूहानी नग़मे (सूरदास के 101 पदों का काव्यानुवाद), सैयद अहमद खाँ और उनका युग।

~@~@~

सर सैयद अहमद खां (1817-1898) का व्यक्तित्व उनकी अद्भुत दूरदर्शिता, विवेकधर्मिता, संकल्प की दृढ़ता, संवेदन शीलता और स्वदेश-भक्ति के तानों-बानों से निर्मित है। इस व्यक्तित्व के मूल में तत्कालीन स्व-धर्मावलंबियों की आर्थिक विपन्नता शैक्षिक पिछड़ेपन और विवेक-शून्य भावुकता के प्रति जहां पीड़ा है, वहीं बहुधर्मी, बहुजातीय एवं बहुराष्ट्रीय स्वदेश को एकराष्ट्रीय चेतना से जोड़ने और नैराश्य हाथ लगने के बावजूद, निरन्तर जोड़ते रहने की भरपूर ललक है।

बाईस वर्ष की अवस्था में, पिता के निधनोपरान्त, सैयद अहमद खां ने फरवरी 1839 ई0 में कंपनी सरकार की नायब मुंशी की नौकरी अवश्य कर ली। किन्तु हाथ-पर-हाथ धरकर, उसी के सहारे गुज़ारा करने के लिए नहीं, अपितु मुंसिफी से संबंधित दीवानी के कानूनों का खुलासा पुस्तक के रूप में

प्रस्तुत करके, अपनी विलक्षण प्रतिभा की पहचान बनाते हुए उन्होंने अपनी इसी प्रतिभा के आधार पर, मुंसिफी की प्रतियोगिता में उल्लेख्य सफ़लता का श्रेय प्राप्त किया और 1841 में मैनपुरी में मुंसिफ नियुक्त हुए। स्पष्ट है कि यह नौकरी अंग्रेज़ी सरकार की कृपा का परिणाम नहीं थी।

दिल्ली के निवास काल में 'आसारुस्सनादीद' शीषर्क पुस्तक लिखकर सर सैयद ने दिल्ली की 232 इमारतों का शोधपरक ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत किया और इस पुस्तक के आधार पर उन्हें रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन का फेलो नियुक्त किया गया। गारसां दतासी ने इसका फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया जो 1861 ई0 में प्रकाशित हुआ।

1857 की जनक्रान्ति में उन्होंने धैर्य और सहनशीलता के साथ अपना घर लुटते और उजड़ते देखा। उन्होंने देखा कि दिल्ली उनके स्वधर्मावलंबियों और निकट के संबंधियों के रक्त से कितनी लाल हो चुकी है। पं० नेहरू ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि जनकान्ति को कुचलने के बाद ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों का जान-बूझकर अधिक दमन किया।' सर सैयद ने महसूस किया कि मुसलमानों के लिए नौकरी के सारे दर्वाज़े बंद हो चुके हैं। फलस्वरूप उन्होंने अपने उजड़े घर को दुबारा बसाने की चिन्ता छोड़ दी। उनके एक मित्र मिस्टर शैक्सपियर ने आत्मीयता दर्शाते हुए सर सैयद को जहानाबाद में एक नामी परिवार की बहुत बड़ी कोठी और जायदाद देनी चाही।

यह परिवार जनकान्ति की भेंट चढ़ चुका था। सर सैयद ने एक उजड़े हुए परिवार की बुनियादों पर अपनी संपन्नता की इमारत खड़ी करने से इनकार कर दिया। पहले विचार हुआ

कि भारत छोड़कर कहीं बाहर चले जायें, किन्तु जातीय-संवेदना ने पैरों में दायित्व की बेड़ियां डाल दीं। उन्होंने प्रवास का विचार छोड़कर कौमी हमदर्दी को अपना लिया और सामने आने वाली हर चुनौती का मुक़ाबला करने का निश्चय किया।

धैर्य और सहनशील सर सैयद अहमद खां ने अपनी गंभीर सूझ-बूझ के आधार पर जनकान्ति के कारणों पर, ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया की चिन्ता किये बिना एक महत्वपूर्ण पुस्तिका प्रकाशित की और इस जोखिम भरे विषय पर कुछ रोशनी डालने वाले प्रथम भारतीय होने का श्रेय प्राप्त किया। 'साइन्टिफिक सोसाइटी' की स्थापना 1864 में करके संयुक्त प्रान्त में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को फैलाने का प्रयास किया। शिक्षा संस्था खोलने का विचार हुआ तो अपनी सारी जमापूंजी यहां तक कि मकान भी गिर्वी, रखकर यूरोपीय शिक्षा पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने के विचार से इंग्लिस्तान गये।

लौटकर आये तो कुछ वर्षों के भीतर ही मई 1875 में अलीगढ़ में मदरस तुलउलूम की बुनियाद रक्खी और फिर दो वर्ष बाद 1877 में एम. ए. ओ. कालेज की स्थापना की। कालेज में सभी धर्मों के लिए दरवाज़े खुले रक्खे। पहले दिन से संस्कृत भाषा की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। स्कूल के स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की भी व्यवस्था की और इसके लिए पं० केदारनाथ की नियुक्ति की। स्कूल तथा कालेज दोनों ही स्तरों पर विद्वान् हिन्दू अध्यापकों की नियुक्ति में कोई संकोच नहीं किया।

कालेज के गणित के प्रोफेसर जादवचंद्र चकवर्ती को अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त हुई और चक्रवर्ती गणित के अध्ययन के बिना गणित का ज्ञान अधूरा समझा गया। अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट गज़ट और 'तहज़ीबुल अख़लाक़' पत्रिका का प्रकाशन किया। इस्लाम की विवेक सम्मत व्याख्या करने की प्रतिकिया स्वरूप संकीर्ण स्व धर्मावलंबियों ने उन्हें अधर्मी कहा और मक्के और मदीने से कत्ल कर देने के फ़तवे मंगाये।कुछ लोगों ने अपने गरीबान में झांके बगैर उन्हें ब्रिटिश-भक्त कहा, कट्टरपंथी पुकारा और वे सब कुछ झेले।

मृत्यु से नौ वर्ष पूर्व एडिनबर विश्वविद्यालय ने सैयद अहमद खाँ की विद्वता से प्रभावित होकर 1889 में उन्हें एल-एल० डी० की डिग्री से सम्मानित किया। आज सर सैयद नहीं हैं, किन्तु उनके निधनोपरान्त पूरी एक शताब्दी बीत जाने पर भी उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के प्रकाश से करोड़ों भारतवासी रोशनी की किरण प्राप्त कर रहे हैं।

~@~@~

7. अपनी-अपनी हैसियत – (व्यंग्य)

-हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय: (1924- 1995)

व्यंग्यकार हरिशंकर परिसाई का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गाँव में हुआ था। परसाई जी ने व्यंग्य को साहित्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रमुख रचनाएँ हैं हँसते हैं रोते हैं, जैसे, उनके दिन फिरे-(कहानी संग्रह) तट की खोज, रानी नागफनी की कहानी (उपन्यास); भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, वैष्णव की फिसलन, पगडंड़ियों का ज़माना, शिकायत मुझे भी है, विकलांग श्रद्धा का दौर (व्यंग्य निबन्ध-संग्रह), हम एक उम्र से वाकिफ हैं, जाने पहचाने लोग (संस्मरणात्मक निबन्ध)'अपनी-अपनी हैसियत' 'विकलांग श्रद्धा का दौर' नामक निबन्ध संग्रह से लिया है।

~@~@~

अखबार खत्म हो जाता है, तो विज्ञापन पढ़ने लगता हूँ। यों अखबारों में होता भी क्या है ? रोज-रोज वहीं-वही समाचार - उसने पैसा खाया था, उसकी पोल खुल गई, उसकी तलाशी हो गई, वह गिरफ़्तार हो गया। मैं न तब उन केन्द्रों के इर्द-गिर्द था जहाँ पैसे खाए जाते थे और न अब उन केन्द्रों के इर्द-गिर्द हूँ, जो पोल खोल रहे हैं। मैं वहाँ भी कहीं नहीं हूँ जहाँ पैसे खाने के लिए नये अड्डे खुल गए हैं। यानी अपने ज़माने के इतिहास के निर्माण में अपना कोई योगदान नहीं है। मेरे हिस्से में सिर्फ इतिहास की कसम खाने का काम पड़ा है। तो समाचारों पर सरसरी निगाह डालकर मैं विज्ञापन पढ़ने लगता हूँ खासकर दिल्ली के होटलों के। इसमें बड़ा रस आता है। अशोक होटल में फ्रेन्च पकवान। वाह ! जनपथ होटल के गुलनार रेस्तरां में

मुगलाई भोजन। अकबर होटल में बार-ए-कबाब ! पढ़ते-पढ़ते लगता है मेरे मुँह में चिकन मुगलाई घुस गया है और - मैं इस स्वाद के साथ घर की दाल-रोटी खा लेता हूँ। वंचित की यही 'संम्पूर्ण क्रान्ति' होती है कि वह अपनी दाल-रोटी के साथ कल्पना में अशोक होटल चबाकर सन्तुष्ट और चुप हो जाए।

आज सब होटलों में जीम चुका तो एक खास विज्ञापन पर ध्यान दिया। ऐसा कोई विज्ञापन रोज ही छपता है पर पहले मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया था। विज्ञापन में अक्सर किसी वृद्ध का चित्र होता है। मैं समझता था यह 'गुमशुदा की तलाश' का विज्ञापन होगा, जैसा उन लड़कों के बारे में छपता है, जो फिल्मी हीरो बनने बम्बई भाग जाते हैं। बूढ़े भी घर से भागने लगे, मैं सोचता रहा। लड़कों ने छपाया होगा- पिता जी, आप जहाँ भी हो लौट आइए। आप गए हैं, तब से माँ की हालत बहुत खराब है। (इस वाक्य को पढ़कर तो बुढ़ऊ कभी नहीं लौटेंगे)। नहीं, बुढ़ऊ भागे नहीं हैं। ऊपर बड़े अक्षरों में छपा है इन मेमोरियम - याने स्मृति में। नीचे बुढ़ऊ के बेटों के नाम हैं। साथ ही कम्पनी का नाम-पता और फोन नम्बर है, जिससे वृद्ध की याद में किसी को रोना आ जाए तो वह फौरन कम्पनी से सामान खरीद ले। दुःख दूर हो जाएगा।

वे कोई लालाजी थे। लाला ने कोई कम्पनी खोल डाली थी। अच्छा किया । लाला कोई बाल काटने की दुकान थोड़े ही खोलते। लाला जी की यह कम्पनी खूब चल निकली। यह भी शुभ हुआ, वरना बेटों को बाप की खर्चीली अखबारी याद का कोई कारण नहीं होता । इसी तारीख को लाला जी की मृत्यु हुई थी। यह भी अच्छा हुआ - क्या पताआगे कम्पनी डूब भी सकती थी। लाला जी की कम्पनी की बेटों ने खूब तरक्की की।

सपूत ऐसे ही होते हैं। बेटे लाला जी को आज ऐलानिया याद कर रहे हैं। क्यों नहीं? ऐसा बाप ही तो याद करने लायक होता है, जो कम्पनी जमाकर फौरन दुनिया छोड़ दे। लाला जी गए कहाँ? लड़कों को यह भी ठीक मालूम है। छपा है 'हू लेफ्ट फार हिज हेवनली एबोड' - याने जो अपने स्वर्गीय निवास को पधार गए। स्वर्ग में लालानगर कालोनी का बंगला नम्बर पाँच लाला जी के लिए पहले से रिज़र्व होगा ।

मेरे पिता की मृत्यु को भी कई साल हो गए। मुझे अभी तक पता नहीं कि वे कहाँ हैं? स्वर्ग में या नरक में ? पुनर्जन्म हो गया ? या कहीं नहीं हैं? मुझे उनकी याद में उनका फोटो छपाने की भी प्रेरणा नहीं हुई, क्योंकि वे धन्चा जमाकर नहीं, उजाड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। उन्होंने सही पितापन स्थापित ही नहीं किया। लाला जी ने सही पितापन स्थापित करके यह संसार छोड़ा और सार-रूप धंधा जमा गए । लाला जी स्वर्गीय हो गए और मेरे पिता सिर्फ मरे। अंग्रेजी में मरे को 'दी लेट' कह देते हैं। हम उसे 'स्वर्गीय' या 'दिवंगत' कहते हैं । विश्वासों और संस्कारों का छल भाषा में आ ही जाता है।

बेटों को क्या पक्का पता है? मुझे शक है। शायद लालाजी का पुनर्जन्म हो चुका है। मनुष्य जन्म दुबारा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मिलता है। लालाजी इतने जल्दी मनुष्य तो बने न होंगे। हो सकता है श्वान योनि में चले गए हों, और अपने कारखाने के फाटक पर ही हों। बेटों को क्या पता कि वे जो कारखाने के फाटक पर भौंकते रहते हैं वे पूज्य पिता जी ही हैं। वे मजमून नहीं पढ़ेंगे और घबराहट में अखबार छिपा लेंगे कि कहीं कोई देवता इनाम के लोभ में उन्हें पकड़वा न दें। वे बेटे लालाजी को क्यों दुःखी और परेशान

करते हैं। इस अखबार को उस कारखाने के कर्मचारी भी देखेंगे। वे शायद कहें यही है वह दुष्ट लाला। मजदूरों का खून चूसता था। कितनी कम तनख्वाह देता था और कितना कामलेता था। मजदूर एक दिन बीमार पड़ जाए तो पैसा काट लेता था। अब रो-रोकर नर्क भोग रहा होगा। व्यापारी भी इसे देखेंगे। वे शायद कहें - अरे, आज सवेरे किसका मुँह देख लिया। अरे, इस लाला ने जिसका पैसा लिया, वापस नहीं किया। इसके नाम को कई लेनदार रो रहे हैं।

'मेरी सलाह मानते तो मैं इन पिता-भक्तों से कहता - उमर-दराज, पिता जी का फोटो इस तरह मत छपाया करो। लोग उनके बारे में बुरी-बुरी बातें कहते हैं। उनकी दबी हुई बदनामी उभर आती है। पर लड़के मेरी बात नहीं मानते। पिता का फोटो छपाना उनके लिए सजावट और विज्ञापन है। जिस दिन लाला जी मरे उस दिन उनका फोटो छपाना लड़कों के लिए वैसा ही है जैसे दिवाली पर नया रंगीन साइनबोर्ड बनवाना। वरना लाला जी को कौन जानता। किसे मतलब है कि उन्होंने कौन-सा पराक्रम किया। किसे इससे गरज़ है कि वे मरे कि नहीं और कब मरे। मगर लड़कों ने लाला जी की याद को राष्ट्रीय महत्व दे डाला।

पैसा ऊपर हो जाता है तो वह अपना रूप प्रकट करना चाहता है। वह अकुलाता है कि मैं हूँ और दिख नहीं रहा हूँ। मैं अपने को अभिव्यक्त करूँ और पैसा इस तरह फूटकर प्रकट हो जाता है, जैसे पके फोड़े का मवाद । फूहड़पन के लिए भी हैसियत चाहिए। मेरी हैसियत नहीं है तो लालाजी के बेटों पर हँस रहा हूँ। पैसा और फूहड़पन दोनों आ जाएँ तो मैं गहरा रंग खरीदकर चेहरे को रंगवा लूँ एक गाल पीला, दूसरा लाल, नाक

हरी, कपाल नीला ।

मेरे सामने एक पैसेवाले युवक की शादी का निमन्त्रण-पत्र रखा है। कई रंगों का है। इतने गहरे रंग हैं कि पढ़ा नहीं जाता कि शादी के बारे में लिखा है या श्राद्ध के । वर की तस्वीरें भी हैं - बैठे हुए, सोचते हुए, लिखते हुए, सितार बजाते हुए । मुझे मालूम है, यह युवक लेन-देन के मामलों में एक बार पिट भी चुका है। एक फोटो इसका भी छपना था - वर जूते खाते हुए । इस निमन्त्रण-पत्र को देखकर मतली आती है। फोड़ा पककर फूट गया है और मवाद बिखर रहा है।

कल उधर एक बारात आई थी। मजदूरों के सिर पर कई गैस-बत्तियां रखी थीं। दूल्हे की सजावट ऐसी कि वधू को उसे देखकर उल्टी हो जाए। दो बैण्ड और इसके साथ ही लाउडस्पीकर। बड़ा घमासान कोलाहल। बारातियों को विभिन्न रंगों से पोत दिया होता तो अच्छा होता । मेरी दीवार पर एक कैलेण्डर टँगा था, जो मैंने निकलवा दिया । बड़े व्यापारी का कैलेण्डर था । उसमें धन की देवी लक्ष्मी फूल पर बैठी हैं। फूल में सौन्दर्य होता है । गंध पाती है, कोमलता होती है। मगर ये लक्ष्मी फूल को कुर्सी सझकर उस पर बैठी हैं। धन की देवी हैं न। जब इनका यह हाल है तो देवी के कृपापात्र फूहड़पन क्यों नहीं करेंगे फिर भी मैं कहता हूँ - देवी, तू अपनी बैठक बदल दे सिंहासन पर बैठ और हाथ में फूल ले ले। या फूल जुड़े में खोंस ले। फिर तू जिसे चाहे धन दे। मगर उसके साथ ही थोड़ी-सी सुरुचि एकाध किलोग्राम दे दिया कर। इससे इन्फेक्शन नहीं होगा और सम्पन्नता के फोड़े से बदबूदार मवाद हीं बहेगा।

~@~@~

8. वह चेहरा (कन्नड़ कहानी)- त. रा. सुब्बराव

अनुदित - डां. एन. एस दक्षिण मूर्ति

लेखक परिचय

बहुमुखी प्रतिभाशाली लेखक श्री ता. रा. सुब्बराव की रचनाएँ कन्नड़ पढ़ेनेवाले घरों में अपरिहार्य हैं। मैसूर राज्य के चित्रदुर्ग के इतिहास से सम्बन्धित आपकी उपन्यास-माला अद्विर्तय है। आपके उपन्यासचन्दवल्लिय तोटा' 'चक्रतीर्थ 'हंसगीत' के आधार पर हिन्दी में "पसन्त बहार' नामक फिल्म भी बनी है। आप फिल्मों में संवादलेखक एवं गीतकार की हैसियत से भी काम किया है। वेश्याओं की समस्या पर लिखा गया आपका उपन्यास 'मसणद हूवु' (श्मशान का • फूल) क्रांतिकारी उपन्यास माना जाता है।

अनुवादक: प्रोफेसर ए. दक्षिणामूर्ति (जन्म 1938 में नेदुवकोट्टई, मन्नारगुडी तालुक, तिरुवरूर जिला, तमिलनाडु, भारत) एक प्रख्यात तमिल विद्वान, लेखक,शास्त्रीय, मध्यकालीन और आधुनिक तमिल साहित्य के अंग्रेज़ी अग्रणी अनुवादक हैं। भारत सरकार ने उन्हें वर्ष 2015 के लिए शास्त्रीय तमिल में आजीवन उपलब्धि के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार, 'टोलकाप्पियार पुरस्कार' से सम्मानित किया।

~@~@~

निर्जन अरण्य का मार्ग, उस मार्ग से एक कार जा रही है। उसमें एक सुन्दरी बैठी है। उसके साथ ड्राइवर भी है। समय काटने तथा गपशप करने के लिए जिन लोगों की जिह्वाएँ विषय के अभाव में परेशान रहती हैं, हैं, उन लोगों के लिए वाद-विवाद करने, बहस करने के लिए इससे बढ़कर मज़ेदार विषय और क्या हो सकता है? इस पर कविता लिख सकते हैं।

दर्शन की बातें कर सकते हैं। मनोविज्ञान की चर्चा कर सकते हैं और कामशास्त्र की बातें भी कर सकते हैं। यदि इन शास्त्रों की दुनिया पर्याप्त न हो, तो आपस में झगड़ा कर सकते हैं।मेरी राय में, सच पूछें, तो अपनी कल्पनाओं को मुखरित करने के लिए इस सुन्दर वस्तु के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकती। मेरी राय ही क्या! हम जितने भी लोग थे. सबकी यही राय थी।

मैं भाषण देने तीर्थहळ्ळि गया था। भाषण समाप्त कर मैं और मित्र अरसु, मौका निकालकर, जगद्विख्यात आगुम्बे का सूर्यास्त देखने तीर्थहळ्ळि के निवासी हमारे मित्र विश्वनाथ की कार से आगुम्बे की तरफ़ रवाना हुए। हमारे साथ तीर्थहळ्ळि के दो-चार अन्य मित्र भी थे।हम लोगों को किसी चीज़ की कमी न थी। उस दिन हमारी जबान खुलकर चली। ऐसे उत्साह में हम लोग शीघ्रता से गपशप के सभी विषय समाप्त कर ज्यों ही सोचने लगे कि अब कौन-सा विषय रह गया है, त्यों ही वह कार हमारे दृष्टिपथ में आयी।

'तीर्थहळ्ळि से आगुम्बे जाने वाला रास्ता एक बात को छोड दें, तो सचमुच स्वर्ग का रास्ता है। रास्ते के दोनों किनारे घने वृक्षों से भरा अरण्य, आँखों को लुभाने वाली हरियालीरे काली कंदराएँ, उन कंदराओं से बहुत दूर पर दिखाई पड़ने वाले सुपारी के बगीचे गहराइयों में उतार-चढ़ाव के कारण रमणीय माँग की वक्र गति के जैसे शोभमान वह लाल रंगीन रास्ता, अपनी सुन्दर आभा से पथिक के मन को मोह लेने वाले अन्यत्र अप्राप्य पुष्प और पौधे एवं एक ही समय में अनेक भावों को व्यक्त करने वाले गायक की प्रतिभा के सदृश भावजगत को हरे रंग में ही प्रकट करने में सयानी प्रकृति की प्रतिभा ये सब भासित थे। सचमुच आगुम्बे की राह कविता कामिनी है।

लेकिन उस सौन्दर्य साधना की बाधा बन गयी उस रास्ते की लाल मिट्टी की धूल, जो हमारी तपस्या को भंग करने वाली अप्सरा थी! आँखें, कान, नाक, मुँह उस धूल से भर जाते। इन इंद्रियों को और किसी काम के लायक न बनाकर, एकदम स्वर्गिक सौन्दर्य को नारकीय बना देती थी वह धूल ।

मंथर गति से चलने वाली हवा के कारण मेघों के समान उठने वाली धूल को संवेग चलने वाले सहस्त्र-चक्रों का आश्रय मिल जाय तो और क्या कहना? आगे जाने वाली कार हमारी तरफ निर्दयता से उड़कर आने वाली धूल को देखने से ऐसा लगा कि इस संसार में धूल के सिवा और कुछ है ही नहीं। हम उस धूल से इतना तंग आ गये कि रवाना हुए दस मिनट भी नहीं हुए थे कि हम लोग आगुम्बे जाने की आशा छोड तीर्थहळ्ळि वापस जाने की बात सोचने लगे। हमारी ऐसी पूर्वाह्न विचित्र परिस्थिति देखकर कार के सारथी विश्वनाथ हमारे आगे जाने वाले कार वाले को उस धूल का जमा चखाने का निश्चय कर, अपनी पुरानी फोर्ड गाड़ी को जितनी शीघ्रता से वह दौड़ सकते थे, दौड़ाने लगा। आगे जो कार जा रही थी, वह नयी थी। हमारी कार की अपेक्षा उसमें द्विगुणित वेग से चलने योग्य अश्व-शक्ति थी। क्या हम उसकी प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं? मुझे ऐसा लगा कि यदि ऐसी उत्कंठा लेकर चले तो और अधिक धूल-पान करने के सिवा और कुछ न होगा। किन्तु विश्वनाथ था पुराना ड्राइवर। उसने आगे जाने वाली कार की चाल से बहुत जल्दी यह समझ लिया कि उसे रास्ते के लिए वे नये हैं और जब आगे की कार रास्ते के एक मोड़ पर धीरे से चलने लगी तो उस अवसर से लाभ उठाकर विश्वनाथ ने कानों

को फाड़ने वाली हॉर्न की आवाज से उनको डराकर हमारी कार को आगे चला दिया।

"अब वे पापी लोग अच्छी तरह धूल का पान करें। उनको दस दिन तक भोजन के लिए कुछ खर्च करना न पड़ेगा।" स्पर्धा में विजयी होने के उत्साह में विश्वनाथ ने कहा। धूल-पान ही क्या हमारी कार के पिछले भाग से यथेष्ट रूप से निर्गत होने वाले धुएँ का भी सेवन कर सकते हैं। लेकिन, हममें से कोई भी उस कार वालों पर तरस खाने को तैयार नहीं थे।

"अरे उस कार में जो आदमी बैठा है, उसे देखा तुमने?" मेरे हाथ को छूते हुए अरसु ने कहा। "इस धूल में कुछ नहीं दीखा है। कौन थे उसमें?" मैंने पूछा-"अरे बुद्धू ! धूल खायी हुई आँखें एक घड़ी भर ही सही, तृप्त हो जाएँ, इस ख्याल से भगवान ने उस कार में एक सुंदरी को बैठाया है। तुमने यह मौका जाने दिया। तुम-जैसे बुद्धू कोई है?" मेरी बदकिस्मती पर तरस खाते हुए अरसे ने कहा।

"सचमुच ब्यूटिफुल वुमन, सर!" विश्वनाथ ने कहा। उन लोगों ने उसको देखा था। अतः बाकी लोगों ने भी जब अरसु और विश्वनाथ की हाँ में हाँ मिलायी, तब मैंने समझा कि मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ जिसने उसे देखा नहीं। बहस गरम होती गयी। उस सुन्दरी के रूप लावण्य के वर्णन में होड़-सी लग गयी।

"कार में तो अकेली ही है और साथ में है एक ड्राइवर। बस, और कोई नहीं। उसने आज अच्छी साइट देखी है।"

"हूँ, रास्ते में कहीं कार खराब हो जाय तब किस्मत खुलेगी।" वेंकट श्याम के मुँह से इस प्रकार उद्गार छलक पड़ा।

"भाई, जमाने की करवट कैसे बदल गयी? अकेली नयी नवेली का ऐसे रास्ते पर एक ड्राइवर के साथ जाना ठीक है क्या?" व्यास महर्षि ने कहा है- "पुरुष अग्निकुंड है और स्त्री नवनीत भरा घड़ा" कहीं उस ड्राइवर का मन डोल जाय तो? यह कलियुग, कलियुग। हिन्दी पंडित ने कहा।

"ड्राइवर का मन डोल जाय यही उसकी तमन्ना है पंडित जी! आजकल की अलबेलियों की बात ही जुदा है। हमने तो इन तितलियों को कालेज में खूब देखा है। कालेज की नयी-नयी हवा खाये हुए मानप्पा ने इस प्रकार पते की बात कही। संवाद का ताँता बना रहा।

आजकल की महिलाएँ और उनका मन, फ्राइड का मनोविज्ञान, पुरुषों की समानता प्राप्त करने की स्पर्धा भावना से किये जाने वाले उनके कार्य, उनकी पोशाक-इन सबका कारण आधुनिक सभ्यता है। आज मानव अपनी नन्हीं सी इच्छाओं का दास बन जाता है, तो इसका भी कारण आज की अनिश्चित और विषम परिस्थिति है। इतना सब होने के बाद अब चली पाप-पुण्य की चर्चा ।

"आज के लोगों को तो पाप-भीति है ही नहीं। सब के सब भोग-विलास में डूबे हुए हैं। बलि पशु जिस प्रकार तोरण के हरे पत्तों को खाकर समझता है कि वह चिरंतन है, उसी प्रकार लोग भ्रम में पड़कर समझते हैं कि आज का क्षणिक सुख ही सुख है, वही शाश्वत है।" हिन्दी पंडित ने जरा छींटाकशी की।

"आज के सुख से बढ़कर क्या कल की मृत्यु का अधिक मूल्य है? बस, बस । जीवन मृत्यु की तैयारी नहीं, मृत्यु आ जाती है, आने दो, लेकिन उसके पूर्व यहाँ जो कुछ है। उसका अनुभव

करके छोड़ेंगे।" मानप्पा ने कहा।

"नहीं पंडितजी! मरने के बाद प्राप्त होने वाली वस्तु अप्सरा है, अमृत है। उसे प्राप्त करने के लिए मरना पड़ेगा। वह अप्सरा, वह अमृत मरने के पहले यहीं मिल जाय वह भी बिना प्रयास के तो उसका मजा चखकर मरने में कौन सा अपराध हो जाएगा? बात की बात में कहता हूँ - मान लें पीछे की कार से जो अप्सरा जा रही है, वह कार रोककर आँख चार करे तो आप क्या करेंगे। 'हम दोनों जल्दी मर जाएँगे। तुम अप्सरा बनकर आओ और अमर बनकर मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा क्या ऐसा कहें या उसको संतृप्त करेंगे? कहिए तो?" रसिक अरसु ने छेड़ा।

ये बातें सुनकर क्वारे पंडितजी का सुखमंडल अरुण हो गया। वे बोल उठे - "धत. पापा! धत् पापी!" सब लोग हँसने लगे।जब हम बातचीत में यों निमग्न थे तब हमारा ड्राइवर विश्वनाथ पीछे के कार वाले के साथ दूसरे प्रकार की क्रिड़ा में निमग्न था।

उसने हमारी कार को आगे कर उस कार को पीछे कर दिया था। उनको धूल का पान करना मात्र में विश्वनाथ को संतोष नहीं हुआ। उसने पीछे के कार वालों के साथ दूसरा खेल भी शुरू कर दिया। कभी कार को धीरे चलाता जब पीछे की कार पास आ जाती, तब अपनी कार तेजी से चलाते हुए उनको और भी धूल का पान कराता। यह सिलसिला बराबर चलता रहा। इसलिए पीछे आने वाले कार की जोर-जोर की हार्न की आवाज से मालूम पड़ता था कि उसमें बैठी हुई वह सुंदरी अपनी रही सही सहनशीलता भी खो चुकी है। मगर विश्वनाथ उनको रास्ता न देकर कार को ऐसा चलाता था मानों

उसने हॉर्न की आवाज सुनी ही नहीं। अपनी कार को जल्दी न चलाकर उनको व्यर्थ में परेशान कर रहा था। इन सबको देखकर मुझसे रहा नहीं गया।

मैंने कहा - "जाने दो विश्वनाथ, उनको रास्ता दे दो। हमें तो आगुम्बे तक ही जाना है। घाटी के मार्ग से अंधाकर में सफ़र करना सुखद नहीं है। शायद उनको जाना जल्दी है।"

"इन सब बातों का ख्याल मत करो, विश्वनाथ। इसने उस समय उसको देखा नहीं। अब समय से लाभ उठाना चाहता है। अरे भाई! यह सब उसे देखने के बहाने हैं।" टठोली करते हुए अरसु ने कहा। क्यों जी, उसे देखना चाहते हो? देखने की उतनी इच्छा है, तब तो उनकी कार को रोक दूँगा, जी भरकर देखो। चाहे तो बातें भी करो।" विश्वनाथ ने मुस्कराते हुए कहा। सब लोग हँसने लगे। मैं भी जरा हँस उठा और कोई चारा भी तो नहीं था।

"उस कार को रोकने से कोई फायदा नहीं विश्वनाथ ! उससे टक्कर लगा दो। लेकिन ध्यान रखो, जख्म न आने पाये। तब तो मुँह माँगी मुराद मिले।" अरसु ने कहा।"शान्त पापम्! शान्त पापम्। जाने वह किस घर की लक्ष्मी है। ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। ऐसा सोचना भी पाप है।" हिन्दी पंडित ने कहा।

"जाने दो अरसु। उसको क्यों परेशान करते हो। देखो, वह लतिका कितनी मनमोहक है।" उन लोगों की बात को बदलने के उद्देश्य से मैंने कहा। लेकिन व्यर्थ, तीर तरकस में ही रह गया। इस संदर्भ को बदलना जरा टेढ़ी खीर था। इस आनंद विनोद में हम अपनी मंजिल (आगुम्बे) तक आ गये।रास्ते के पार्श्व में स्थित होटल में काफी पीने जब हमने

अपनी कार रोकी, तब पीछे की कार बिजली की तरह आगे निकल गयी।

कार में बैठी हुई उस रमणी पर मेरी दृष्टि दौड़ गयी। सुबह उसने भी सारे संसार का द्वेष अपनी आँखों में भरकर इन लोगों को तराशते हुए देखा। उसकी लाल आँखों ने तो मेरे अवयव में भी आग लगा दी। “उसका मन बहुत विदग्ध हो गया होगा विश्वनाथ। वैसा तंग न करना चाहिए था। हमारी तरफ़ उसने किस दृष्टि से देखा, क्या तुमने पहचाना? ऐसा लगा कि वह हम पर बहुत कुपित हो गयी है।" मैंने कहा।

"हाँ, हाँ, स्त्री के कुपित होने से ही उसका सौंदर्य निखरता है। क्या तुम इतना भी नहीं जानते? तुम भी कैसे उपन्यासकार हो? अरे बुद्ध देव, कोध, प्रेम का दूसरा रूप है, समझे न?" हँसते हुए अरसु ने कहा। मैंने बात बढ़ाना उचित नहीं समझा। हम लोगों ने हाथ मुँह धोकर काफी पी ली। उसके बाद सूर्यास्त के दृश्य को देखते-देखते उसके लिए निर्मित वेदिका के पास अपनी कार से निकले।

मै समझा था कि आगुम्बे-मार्ग का सौंदर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है लेकिन जब मैंने आगुम्बे की घाटी के मार्ग का अति रमणीय दृश्य देखा तो भौंचक्का रह गया। उस सौंदर्य को देखकर आँखें और उसका वर्णन करने की शक्ति से परे होकर, बुद्धि – शक्ति दोनों पराजित हो गयीं। घाटी के मध्य स्थित वेदिका पर खड़े होकर वहाँ से समुद्र तट तक व्याप्त वन शय्या को देखकर मैं मुग्ध हो गया। दूर बहुत दूर फिजला की चमक के सदृश शोभमान समुद्र की तरंगे आँखों श्री चकाचौंध करती थीं। मन आनंद निमग्न हो अनुभव करने कि इस भव्य दृश्य को देखकर जीवन धन्य हो गया। किसी

समय आकाश में मेघों को चारों ओर स्वर्णिम बसंत क्रीड़ा से बार-बार अनेक रूपों में परिवर्तित होकर समुद्र में अदृश्य होने वाली सूर्यास्त की रमणीयता दिव्य आभा के रूप में दृष्टिगोचर हुई।

सब लोगों ने अपने चारों ओर घिरे संसार को विस्मृत कर उस दृश्य को जी भरकर देखा। "हम लोगों ने इसे देख लिया न! चलो, सोमेश्वर तक चलें।" विश्वनाथ ने कहा।"वहाँ क्या है?" मैंने पूछा। "घाटी पर चढ़ते समय जो रमणीयता नेत्रानंददायक होता है, उसकी अपेक्षा घाटी से उतरते समय वह द्विगुणित प्रभावशील होती है। तिसपर आगुम्बे की घाटी की शोभा और भी प्रभावशील है। उठो, चलें।" सब लोगों ने स्वीकार किया। वेदिका से रास्ते की तरफ चले। कार में बैठे।ढालू और अनेक मोड़वाले उस रास्ते पर कार यों चलती थी, मानों लट्टू घूम रहा हो। हम जिस रास्ते से होकर आये थे, वहाँ का सौंदर्य चित्ताकर्षक था। ढालू प्रदेश का यह सौंदर्य हृदय में भय उत्पन्न करने वाला था, रमणीय होते हुए भी रुद्र था।

जीवन और मरण में अन्तर क्या है, यह समझने के लिए यहाँ आना चाहिए, जब हजारों फुट गहरी खाई के पास कार घूमकर जाने लगी, तब अरसु ने कहा- “जीवन-मरण, आनंद-आँसू, सौंदर्य-कुरुपता इतना ही तो अंतर है? कितनी समीपता है।“ न जाने क्यों वह बात सुनकर मेरा हृदय धड़कने लगा। "देखो, सोमेश्वर आ गया," विश्वनाथ ने कहा। उसने जिस तरफ उँगली उठाकर दिखाया उस तरफ़ -सोमेश्वर के मार्ग की ओर लोगों की भीड़ जमा हो गया। मैंने देखा अस्पष्ट रूप से जनता के कोलाहल की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। "कोई एक्सिडेंट हो

गया।" मैंने जिस ओर देखा था उसी ओर निहारते हुए कार की तेजी को बढ़ाकर विश्वनाथ ने कहा। बहुत जल्दी हमारी कार भीड़ के पास पहुँच गयी। भीड़ के पास पहुँचते ही हम लोग कार से नीचे कूद पड़े और देखने लगे कि कौन सी दुर्घटना हो गयी है। देखते ही सिर चकरा गया। घाटी से उतर आने वाली एक कार रास्ते के पार्श्वस्थ मील-पत्थर से टकराकर बुरी तरह टूट-फूट गयी है। कार इतने जोर से टकरा गयी है कि उसके अंदर जो व्यक्ति बैठे थे वे बहुत दूर जा गिरे हैं। उनका सारा शरीर जख्मी हो गया है और रक्त से लथपथ हैं, दो लाशें! "वही कार - वे ही लोग।"- विश्वनाथ ने कहा।

"सच है, वही कार जिसे हमने पीछे छोड़कर परेशान किया था। उसके अंदर जो बैठी थी, जो ड्राइवर था वे ही।

वह रूपवती - इसका लावण्य इस भयावह रूप में...! उस रमणी को देखकर पहले हम हँस उठे थे और अब मृत्यु हम पर हँस रही थी।

"आह, यह कितनी भयानक मृत्यु है!" थरथराते हुए मानप्पा ने कहा।

"यह मृत्यु नहीं, हत्या है। मैंने मार्ग में उस पर व्यंग्य कसा और उसे परेशान किया। इससे वह मार्ग का ठीक ख्याल न कर कार तेजी से बढाने लगी। यही उसकी मृत्य का कारण है। यदि मैं जानता कि ऐसा होगा तो मैं उसे परेशान न करता, उसका मजाक न उड़ाता।" विश्वनाथ ने गमगीन आवाज में कहा।

यह बात सुनकर मेरा भी शरीर थरथराने लगा। "चूमने योग्य अधर - तुमने कहा था। अब चूम लो। मैंने तभी कहा था कि ऐसी दुर्भावना से प्रेरित होकर कुछ न कहना चाहिए।"

पंडित जी ने अति कठोर स्वर में अरसु को देखते हुए कहा। "पापी, पापी"

"मैं पापी नहीं हूँ।" अरसु ने रूँधी हुई आवाज में कहा।

"और कौन?" तमतमाते हुए पंडित जी ने पूछा। "मैं नहीं विधाता। इस मनमोहक सुंदरता की सृष्टि कर उसे किसी के आस्वादन के योग्य न बनाकर मृत्यु की ओर खींच लिया। वह विधाता वह पापी है। सौंदर्य के आगार इस आगुम्बे की घाटी में, इस सौंदर्य को मृत्यु के वश में करने वाला वह विधाता पापी है या उससे सृजन किये गये सौंदर्य की सार्थकता की स्तुति करने वाला मैं पापी हूँ। आप ही कहिए। प्रश्न के रूप में तीक्ष्ण स्वर और कडवी कर्कश ध्वनि में अरस ने पूछा। अंधकार से परिपूर्ण घाटी और तलहटी में यह प्रश्न प्रतिध्वनित हो उठा। मैंने अपने चारों तरफ का सौंदर्य देखा। उस पर मृत्यु का अंधकार छाया हुआ था। एक घड़ी के पूर्व सौंदर्यातिरेक से हृदय हरने वाली आंगुबे की घाटी काल कराल दैत्य के सदृश भयंकर दीख पडती थी। वही घाटी - वही अरण्य, वे ही लोग - लेकिन तब जो देखा गया, वह नहीं है। अब भी वही चेहरा, पर कितना अंतर।

~@~@~

<u>वाणिज्य शब्दावली – Business Terminology</u>

1. Accountant - लेखाकार
2. Asset - संपत्ति
3. Audit लेखा परीक्षा
4. Bonus - लाभांश
5. Bill - विधेयक
6. Deposit - जमा
7. Collaboration - सहयोग
8. Export duty - निर्यात शुल्क
9. Foreign Capital - विदेशी पूंजी
10. Grant - अनुदान
11. Head Clerk - मुख्य लिपिक
12. Idle money - निष्क्रिय द्रव्य
13. Investor - विनियोक्ता
14. Indemnity - क्षतिपूर्ति
15. Bond - बंध प्रपत्र
16. Joint Account - संयुक्त खाथा
17. Key Plan - मूल योजना
18. Labour welfare - श्रम कल्याण
19. Land mark - सीमा
20. Managing agent - प्रबंध अभिकर्ता
21. Monthly statement - मासिक विवरण
22. Money market - मुद्रा बाज़ार
23. National economy - राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था
24. Marketing - विपणन
25. Ordinary share - सामान्य शेर

26. Option - विकल्प
27. Ordinance - अध्यादेश
28. Partner सहभागी
29. Primary discount - प्राथमिकछूटदर
30. Personal loan - व्यकतिगतक़र्ज
31. Provided fund - भविष्यनिधि
32. Perusal - अवलोकन
33. Poverty - ग़रीबी
34. Retirement - निवृत्ति
35. Relif - राहत
36. Recession - मंदी
37. Revenue - राजस्व
38. Registration - पंजीकरण
39. Share index - शेरसूच्यांक
40. Trade balance - व्यवहारिक/संतुलन
41. Trunover - आवर्त
42. Treasury - राजकोश
43. Tender - निविदा
44. Unemployment - बेरोज़गार
45. Undersigned - अधोहस्ताक्षरी
46. Volume - खंड
47. Voucher - प्रमाणक
48. Verification - सत्यापन
49. Wholeness - पूर्णता
50. Zero interest - शून्य ब्याज

~@~@~